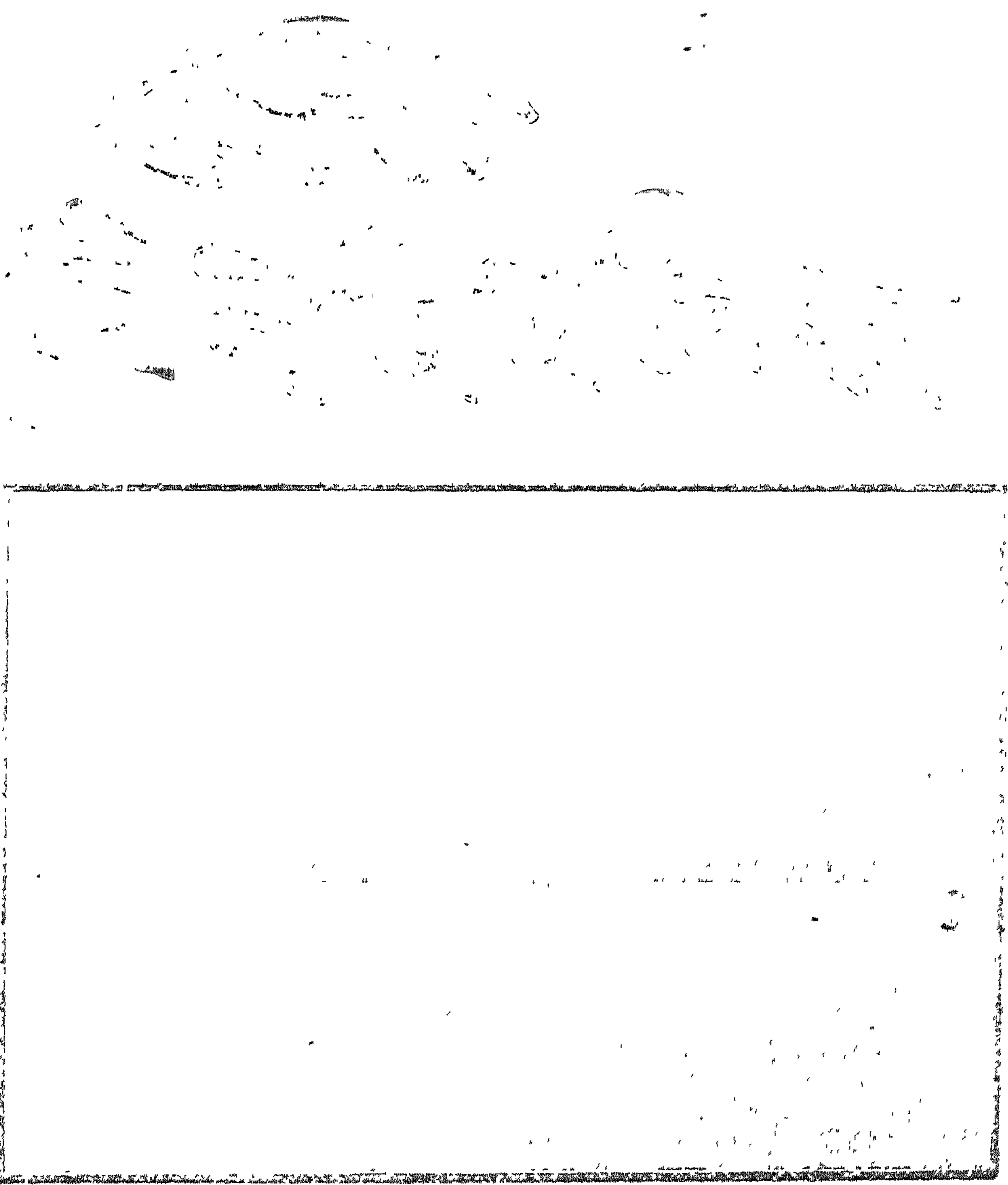


Barcode - 5990010042459
Title - soordas ki vinay patrika
Subject - Literature
Author -
Language - hindi
Pages - 75
Publication Year - 1924
Creator - Fast DLI Downloader
<https://github.com/cancerian0684/dli-downloader>
Barcode EAN.UCC-13





[हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन]

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन,

प्रयाग

सूरदास
की
विनय पत्रिका

(सटिप्पण)



सम्पादक
वियोगी हरि



प्रकाशक
हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग
[नूतन संस्करण]

प्रथम बार १५०० } संवत् १९८१ वि० { मूल्य ३)

कृतज्ञता-प्रकाश



श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ महोदय ने बम्बई के सम्मेलन में स्वयं उपस्थित होकर जो पाँच सहस्र रुपये की सहायता सम्मेलन को प्रदान की थी, उसी सहायता से सम्मेलन इस “सुलभ-साहित्य-माला” के प्रकाशन का कार्य कर रहा है। इस “माला” में जिन सुन्दर और मनोरम ग्रन्थ-पुष्पों का ग्रन्थन किया जा रहा है उनकी सुरभि से समस्त हिन्दी-संसार सुवासित हो रहा है। इस “माला” के द्वारा जो हिन्दी-साहित्य की श्रीवृद्धि हो रही है। उसका मुख्य श्रेय श्रीमान् बड़ौदा-नरेश महोदय को है। श्रीमान् का यह हिन्दी-प्रेम भारत के अन्य हिन्दी-प्रेमी श्रीमानों के लिए अनुकरणीय है।

निवेदक—

मन्त्री

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन,

प्रयाग

प्रस्तावना

श्रीसूरदासजी का परिचय

व्रजभाषा-साहित्यसूक्त सूरदासजी का जन्म लगभग संवत् १५४० में हुआ था । आगरा-मथुरा की सड़क पर रुनकता (रेणुका क्षेत्र) गांव इनका जन्मस्थान माना जाता है । मतान्तर से दिल्ली के समीप सीहो गांव भी इनका जन्म स्थान कहा जाता है । यह सारस्वत ब्राह्मण थे । पिता का नाम रामदास था । सरदार कवि ने इन्हें, महाकवि चन्द बरदायी का वंशज मान कर, ब्रह्मभट्ट सिद्ध किया है । किन्तु महाप्रभु बल्लभाचार्य के पौत्र की रची हुई “चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता”में इसकी कोई चर्चा नहीं है । और प्रमाण कोटि में वार्त्ता ही सर्वोच्च मानी जा सकती है । क्योंकि उसके प्रणेता गोसाईं गोकुलनाथजी इनके समकालीन थे ।

सूरदासजी गऊघाट पर रहते थे । यह गऊघाट आगरा के समीप ही है । यहीं पर यह श्री बल्लभाचार्यजी के शरण में आये । गुरुदेव के सदुपदेश से श्रीमद्भागवत के आधार पर इन्होंने व्रजभाषा में सूरसागर नाम के एक सुललित बृहद्ग्रन्थ का प्रणयन किया । सागर में सवा लाख पद हैं । पर दुर्भाग्य है कि षाँच-छह हजार पदों के अतिरिक्त अभी तक उसकी कहीं कोई बड़ी प्रति प्राप्त नहीं हुई । इनके बनाये हुए निम्नलिखित ग्रन्थ भी कहे जाते हैं:—

सूरसारावली	}	प्राप्य
साहित्यलहरी (दृष्टिकूटक पदावली)		
व्याहलो	}	अप्राप्य
नल दमयन्ती		
हरिवंश टीका		

सूरसारावली और साहित्यलहरी तो सूरसागर के ही अंश हैं । रहे शेष तीन ग्रन्थ, सो उनके संबन्ध में निश्चयात्मक बात नहीं कही जा सकती कि वे इन्हीं सूरदास के बनाये हैं अथवा किसी अन्य सूरदास के ।

गुनाई विठ्ठलनाथजी (श्रीवल्लभाचार्यजी के पुत्र) ने सूरदासजी को पुष्टिभारगीय आठ सर्वोत्तम कवियों में सर्वोच्च स्थान दिया था । इन्हीं आठ कवियों के मंडल को 'अष्टछाप' कहते हैं । सूरदासजी जन्मान्ध नहीं थे, पीछे अन्धे हो गये थे । पारासोली गांव में इनका देहांत हुआ था । इनके गोलोक-वास का समय संवत् १६२० के लगभग माना जाता है । गोलोकयात्रा के संबन्ध में भारतेन्दुजी ने लिखा है—

मन समुद्र भो सूर को, सीप भये चख लाल ।

हरि मुक्ताहल परत ही, मूँदि गये तत्काल ॥

सूरदासजी हिन्दी के वाल्मीकि या वेदव्यास कहे जाते हैं, भक्तिपक्ष में तो यह उद्धव के अवतार माने गये हैं । सूरसागर में इन्होंने शृंगार और वात्सल्य को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है । वात्सल्य-दर्शन तो अलौकिक और अपूर्व ही है । इन कवि-सम्राट् के सम्बन्ध में कई भावुक जनों ने अपनी अमली-अनुबलित सूक्तियों द्वारा प्रकाशित की है । कतिपय प्रचलित सूक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

“उत्तम पद कवि गंग के, कविता को बलवीर ।

केसव अरथ गँभीर को, सूर तीन गुन धीर ॥”

“तत्व तत्व सूर कही, तुलसी कही अनूठि ।

बची खुची कबिरा कही, और कही सबजू ठि ॥”

“किधौँ सूर को सर लग्यो, किधौँ सूर को पीर ।

किधौँ सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर ॥”

“सूरदास विन पदरचना, अब कौन कविहिं करि आवै ।”

भक्तवर नामाजी भी अपनी भक्तमाल में इन महाराज का इस प्रकार गुण-गान कर गये हैं—

उक्ति, चोज, अनुप्रास, वरन अस्थिति अति भारी ।

बचन, प्रीतिनिर्वाह, अरथ अद्भुत तुरुधारी ॥

प्रतिबिम्बित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी ।

जनम करम गुन रूप सबै रसना जु प्रकासी ॥

बिमल बुद्धि गुन और की जो वह गुन स्रवननि धरै ।

श्री सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ॥

विनयपत्रिका

विनयपत्रिका नाम का इनका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है । सूरसागर में विनय-सम्बन्धी जो पद मिलते हैं उन्हीं के संग्रह को विनयपत्रिका नाम दिया गया है । नवलकिशोर प्रेस लखनऊ द्वारा प्रकाशित सूरसागर में सूक्त विनयपत्रिका का उल्लेख है । इनके विनयविषयक पद लगभग दो सौ के हैं । उनमें दो-तीन पद गुसाईं तुलसीदासजी की विनय-पत्रिका के भी मिल गये हैं । कुछ पद दो-दो तीन-तीन बार आ गये हैं और कुछ अशुद्ध एवं बहुत से शिथिल पाये जाते हैं । हमने उनमें से सर्वोत्तम सौ पद चुन कर इस पुस्तक में संकलित किये हैं । क्रम गुसाईं तुलसीदास की विनयपत्रिका का रखा है । रखा क्या है—इन दोनों महात्माओं को कथन-शैली अधिकांश में मिलती भी है । कहीं-कहीं पर दोनों का

भावसाम्य भी टकरा गया है । सूरसागरान्तर्गत 'रामचरित' के अन्त में "लिखि कागद पहुँचाऊँ" इस पदांश से जान पड़ता है कि गुसाईं तुलसीदासजी की तरह इन्होंने भी विनयपत्रिका लिखने का विचार किया हो, और बहुत सम्भव है कि, सूरसागर के संकलनकर्त्ता श्रीकृष्णानन्द व्यास ने इसी पद के आधार पर इनके विनय-पद-समुच्चय को विनयपत्रिका का नाम दिया हो । जो हो, यह पद समुच्चय विनयपत्रिका होने का उतनाही अधिकार रखता है जितना गुसाईंजी की विनय पत्रिका । इस संग्रह में हमने सौ सुन्दर पदों का संकलन किया है । अन्त में संक्षिप्त शब्दार्थ भी दे दिया है । यदि सहृदय भावुक पाठकों का मनोमुकुल इस पुस्तक से कुछ भी प्रफुल्लित हुआ तो संकलनकर्त्ता अपनी तुच्छ सेवा को सार्थक समझेगा, ऐसा उसे विश्वास है ।

आश्विन कृष्ण ११ सं० १९८१ }

विनीत—
वियोगी हरि

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

सूरदास की विनयपत्रिका

श्रीहरिविन्दना

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ । हरिचरनारविन्द चित धरौ ॥
हरि की कथा होइ जब जहाँ । गङ्गाहू चलि आवै तहाँ ॥
जमुना झिन्धु सरस्वति आवै । गोदावरो बिलम्ब न लावै ॥
सर्व तीर्थ को बासा तहाँ । सूर हरिकथा होवै जहाँ ॥१॥

चरनकमल बन्दों हरिराई १ ।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे को सब कछु दरसाई ।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रङ्गु चलै सिर छत्र धराई ॥
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दों तेहि पाई २ ॥२॥

श्रीगुरुविन्दना

भरोसो इह इन चरनन केरो ।

श्रीवल्लभ नखचन्दछटा बिन सब जग मांम्ह अंधेरो ॥
साधन और नहीं या कलि में जासों होत निबेरो ।
सूर कहा कहि दुबिधि आंधरो बिना मोल को चेरो ॥४३॥

गुरु बिनु ऐसी कौन करै ।

माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै ॥
भवसागर तेँ बूझत राखै, दोषक हाथ धरै ।
सूरदास गुरु ऐसी समरथ छिन में लै उधरै ॥४॥

१—पाठान्तर “ बन्दों श्री हरिपद सुखदाई । ” २—पाठान्तर “ सूरदास
प्रभु की चरनागत बारम्बार बसो ते पाई । ” ३—पाठान्तर “ जग में । ”

ब्रज-वृन्दावन-महिमा

धनि यह वृन्दावन की रेनु ।

नन्दकिशोर चराई गैयां, मुखहि बजाई वेनु ॥

नन्दलालेन को ध्यान धरै जो अति सुख पावत चैनु ।

चलत कहा मन बसत पुरातन, जहाँ लेन नहिं देनु ॥

यहां रहौ जहँ जूठनि पावै ब्रजवासी के ऐनु १ ।

सूरदास ह्यां की सरबरि नहिं कलपवृच्छ सुरधेनु ॥५॥

यमुना-महिमा

जमुना पवित्र पावन करघो ।

अथम ही जब दरस दीनों सकल पाप जु हरघो ॥

भुज-रंजि परस करि पयपान दै मुख भरघो ।

नाम लेतहि गई दुरमति कृष्णारस-बस तरघो ॥

गोपकन्या । कियो मज्जन लाल गिरिधर बरघो ।

सूर श्रीगोपाल निरखत सकल कारज सर्यो ॥ ६ ॥

गंग-महिमा

हरि-पद-कमल को मकरंद ।

मलिन मति मन मधुप परिहारि विषय नीरस फंद ॥

परम सीतल जानि संकर सिर धर्यो तजि चंद ।

नाक सरबसु लैन चाह्यो सुरसरी को बिंद ॥

अमृतहू ते अमल अति गुन, सवत निधि आनंद ।

सूर तीनों लोक परस्यो सुर असुर जस छंद ॥७॥

त्रिवेणी-महिमा

जय जय जय जय माधव-वैनी ।
 जगहित प्रगट करौ करुणामय अगतिन को गतिदैनी ॥
 जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजो अघसैनी ।
 जनु तालगि तरवार त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी ॥
 मेरुमूठि बरवारि पालछिति बहुत वित्त की लैनी ।
 सोमि अंग-लरंग त्रिसङ्क्रम धरी धार अति पैनी ॥
 दरसत ही नासै जमसैनिक जिमि नह वालक सैनी ।
 एकै नाम लेत सब १ भाजै पीर सुभूमि रसैनी ॥
 जा जल युद्ध निरखि सनमुख ह्वे सुंदर सैना वैनी ।
 सूर परसपर करत कोलाहल गर सृग पहरावैनी ॥८॥

बृन्दावन-वृन्दा

बन्दों चरनसरोज तुम्हारे ।
 सुन्दर स्थान कमलदल लोचन ललितत्रिभंगि प्रानपतिर प्यारे ॥
 जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधुसुता उर ते नहिं टारे ।
 जे पद पदुम तातरिस-त्रासित, मनबचक्रम प्रह्लाद सँभारे ॥
 जे पद-पदुम परसि जल पावन सुरसरि दरस कटत अघ भारे ।
 जे पद-पदुम परसि रिपिपतिनी, बलि नृग व्याध पतित बहु तारे ॥
 जे पद-पदुम रमत वृन्दावन अहिसिर धरि अगनित रिपु मारे ।
 जे पद-पदुम परसि ब्रजभामिनि सरबसु दै सुत-सदन विसारे ॥

१—पाठान्तर 'अघ'

१ पाठान्तर 'त्रिभंगी प्रानपति प्यारे ।'

जे पदपदुम रमत पांडवदल दूत होय सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पदपंकज त्रिविध ताप दुखहरन हमारे ॥ ६ ॥

भजि मन नन्दनन्दन चरन ।

परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन ॥

सनक संकर ध्यान ध्यावत निगम अवरन बरन ।

सेष सारद रिषि सु नारद संत चिंतत चरन ॥

पद-पराग प्रताप दुर्लभ लोक के हितकरन ।

परसि गंगा भई पावन तिहुं पुर धर-धरन ॥

चित्त चिंतन करति कीरति अघ हरत जगतरन ।

गये तरि लै नाम केते पतित हरिपुर-धरन ॥

जासु पदरज परसि गौतम-नारि-गति-उद्धरन ।

तासु महिमा प्रगट केवट धोइ पग सिर धरन ॥

सोइ पद-मकरन्द पावन और नहिं सरवरन ।

सूर भजि चरनारविंदनि मिटै जीवन मरन ॥ १० ॥

स्याम कमल-पद-नख की सोभा ।

जे नखचंद इन्द्र सिर परसे, सिव बिरंचि मन लोभा ॥

जे नखचंद सनक मुनि ध्यावत, नहिं पावत भरमाहीं ।

जे नखचंद प्रगट ब्रजजुवती, निरखि-निरखि हरषाहीं ॥

जे नखचंद फनीन्द्र-हृदय ते, एको निमिष न टारत ।

जे नखचंद महामुनि नारद पलक न कहूँ बिसारत ॥

जे नखचंद भजत खल नाखत, रमा हृदय जेहि परसत ।

सूर सोइ नखचंद बिमल छबि गोपीजन मिलि दरसत ॥ ११ ॥

श्रीकृष्ण-ध्यान

करि मन नन्दनन्दन-ध्यान ।

सेवि चरनसरोज सीतल तजि विषै-रसपान ॥

जानु जंघ त्रिभंग सुन्दर कलित कंचन-दंड ।

काछनी कटि पीतपट-दुति कमलकेसरखंड ॥

जनु मराल प्रबाल झौना किंकिनी कलराव ।

नाभि-हृद् रोमावली-अलि चारु सहज सुभाव ॥

कंठ मुकुतामाल मलयज उर बनो बनमाल ।

सुरसरी के तीर मानों लता स्याम तमाल ॥

बाहु पानिसरोज पल्लव धरे मृदु मुख बेनु ।

अति बिराजति बदनविधु पर सुरभि-मण्डित रेनु ॥

अधर दसन कपोल नासा परम सुन्दर नैन ।

चलत कुंडल गंडमंडल मनो निरतत मैन ॥

कुटिल कच भ्रुव तिलक रेखा सीस सिखी सिखंड ।

मदन धनु मनु सर संधाने देखि घनकोदंड ।

सूर श्रीगोपाल की छवि दृष्टि भरि-भरि लेहिं ॥

प्राणपति की निरखि सोभा पलक परन न देहिं ॥१२॥

ऐसे सुनै नंदकुमार ।

नख निरखि ससि कोटि वारत, चरनकमल अपार ॥

जानु जंघ निहारि रंभा करनि डारति वारि ।

काछनी पर प्राण वारत देखि सोभा भारि ॥

कटि निरखि तनु सिंह वारत, किंकिनी जु मराल ।

नाभि पर हृद् आपु वारत, रोमावलि अलिमाल ॥

हृदय मुकुतामाल निरखत, वारि अवलि-बलाक ।
 करज कर पर कमल वारत, चलत जहँ-तहँ साक ॥
 भुजा पर वर नाग वारत, गये भाजि^१ पताल ।
 ग्रीव की उपमा नहीं कहूँ, लखति परम रसाल ॥
 चिबुक पर चित वारि हारत, अधर अम्बुज लाल ।
 बन्धूक बिद्रुम बिंब वारत, ते भये बेहाल ॥
 वचन सुनि कोकिला वारत, दसन दामिनि-काँति ।
 नामिका पर कीर वारत, चारु लोचन भाँति ॥
 कंज-खंजन-मीन-मृग-सावकनि डारत वार ।
 भृकुटि पर सुर-चाप वारत, तरनि कुंडल हार ॥
 अलक पर वारत अँध्यारी, तिलक भाल सुदेस ।
 सूर प्रभु सिर मुकुट धारे, धरे नटवरभेस ॥ १३ ॥

सोभा कहत कहे नहिं आवै ।

अँचवत अति आदर लोचनपुट मन न रूप कों पावै ॥
 सकल मेघ घनस्याम सुभग बपु तडित-वसन उर माल ।
 सिखी-सिखा तनु धातु विराजति सुपन सुगन्धर प्रबाल ॥
 कल्लुक कुटिल पुनि बिपिन सघन सिर गोरजमंडित केस ।
 सोमित मनु अम्बुज-पराग-रस राजत अली सुदेस ॥
 कुंडल किरिन कपोल कुटिल छबि नैन कमलदल मीन ।
 प्रति प्रति अंग अंग कोटिक छबि^३ सुनु सखि परम प्रवीन ॥
 अधर मधुर मुसुकानि मनोहर कोटि मदन मनहो न ।
 सूरदास जहँ दृष्टि परति है होति तहीं लवलीन ॥ १४ ॥

१ पाठान्तर 'भाजि' २ पाठान्तर 'सुरंग' ३ पाठान्तर 'प्रति प्रति
 अङ्ग अङ्ग कोटि छवि'

नैननि ध्यानं नन्दकुमार ।

सीस मुकुट सिखण्ड भ्राजत, नाहिं उपमा पार ॥
 कुटिल केस सुदेस राजत, मनहुं मधुकरजाल ।
 रुचिर केसर-तिलक दीन्हें, परम सोभा भाल ॥
 भ्रुकुटि बंकट चारु लोचन, रहीं जुवनी देखि ।
 मनो खंजन चाप डर डरि उड़त नहिं तेहि पेखि ॥
 मकर कुंडल गंड भलमल निरखि लज्जित काम ।
 नासिका छवि कीर लज्जित कवि न बरनत नाम ॥
 अधर-विद्रुम दसन-दाढ़िम चिबुक है चितचोर ।
 सूर जल-जुलनं पुरन नारि-नैन-चकोर ॥१५॥

नाम-कीर्तन

जय माधव, गोविंद, लुलुन्द, हरि ।
 हनुमंत, कल्याण, कंस-अरि ॥
 प्रनतपाल, केसव, कमलापति ।
 कृष्ण, कमललोचन, अनन्यगति ॥
 रामचंद्र राजीव-नयन वर ।
 लरजलक्षु, श्रीपति, सारंगधर ॥
 वनमाली, विट्ठल, बावन बल ।
 बासुदेव, बासी ब्रजभूतल ॥
 खर-दूषन-त्रिसिरा-सिर-खण्डन ।
 चरनचिन्ह दंडक-भुवमंडन ॥
 बकी-बदन-बक-बदन-बिदारन ।
 बरुन-त्रिषाद-नंद-निस्तारन ॥

रिपिमखत्रान, ताडिका-तारन ।
 बन बसि तातबचन-प्रतिपारन ॥
 कालीदमन, केसि कर पातन ।
 मघ-मरिष्ट-धेनुक-अनुघातन ॥
 रघुपति प्रबल पिनाक-प्रभंजन ।
 अगहित, जनकसुता-मनरंजन ॥
 गोकुलपति, गिरिधर, गुनसागर ।
 गोपीरमन, रासरति-नागर ॥
 करुनामय कपिकुलहितकारी ।
 बालि-विराध-कपट-मृग-हारो ॥
 गुप्त-गोपकन्या-व्रत-पूरन ।
 दुष्ट-द्वन,१ भक्तन-दुख-चूरन ॥
 रावन-कुंभकरन - सिर - छेदन ।
 तरुवर सात एक सर भेदन ॥
 उत्तर-क्रिया गीध कृतकारी ।
 दरसन दै सबरी उद्धारो ॥
 जे पद सदा संभु हितकारी ।
 जे पद परसि सुरसरी गारो ॥
 जे पद रमा-हृदय नहिं टारो ।
 जे पद तिहुँ भुवन प्रतिपारो ॥
 जे पद अहि-फन-फन प्रति धारो ।
 जे पद वृन्दाबिपिन-बिहारो२ ॥

१ — पाठान्तर 'दुष्टन दुख ।'

२ पाठान्तर 'वृन्दाबनहि बिहारो ।'

जे पद सकटासुर-संहारी ।
 जे पद पांडव-गृह-पगुधारी ॥
 जे पद-रज गौतम-तिय तारो ।
 जे पद भक्तन के सुखकारी ॥
 सूरदास सुर जांचत ते पद ।
 करहु कृपा अपने जन पर सद ॥ १६ ॥

नाम-महिमा

बड़ी है रामनाम की ओट ।
 सरन गये प्रभु काढ़ि देत नहि, करत कृपा के कोट ॥
 बैठत सभा सबै हरिजू की, कौन बड़ो को छोट ।
 सूरदास पारस के परसे मिटत लोह को खोट ॥ १७ ॥
 रे मन, कृष्णनाम कहि लीजै ।
 गुरु के बचन अटल करि मानहुँ, साधुप्रमाण कीजै ॥
 पढ़िये गुनिये भक्ति भागवत, और कहा कथि कीजै ।
 कृष्णनाम बिन जनमु बादिही, विरथा काहे जीजै ॥
 कृष्णनामरस बह्यो जात है, तृषावन्त हैं पीजै ।
 सूरदास हरिसरन ताकिये जनम सफल करि लीजै ॥ १८ ॥

है हरिनाम को आधार ।
 और या कलिकाल नाहिँन रह्यो बिधि-व्यौहार ॥
 नारदादि सुकादि संकर कियो यहै बिचार ।
 सकल स्तुति-दधि-मथत पायो इतो यह घृतसार ॥
 दसहु दिसि गुन करम रोक्यो मीन को ज्यों जार ।
 सूर हरि के भजनबल ते मिटि गयो भव-भार ॥ १९ ॥

है हरिभजन को परमान ।

नीच पावै ऊंच पदवी, बजै बिजै-निसान ॥
 भजन को परताप ऐसो तरै जल पाषान ।
 अज्ञामिळ अरु भोल गनिका चढ़े जान विमान ॥
 निगम जाको सुजस गावत सुनत संत सुजान ।
 सूर हरि को सरन आयो राखिवा भगवान ॥ २० ॥

माया

हरि, तव माया को न बिगांया ।
 सौ जोजन मरजाद सिंधु को पल में राम बिलोयो ॥
 नारद मगन भये माया में ज्ञान-बुद्धि-बल सोयो ।
 साठ पुत्र अरु द्वादस कन्या कंठ लगाये जोयो ॥
 सकर को चित हस्यो कामिनो सेज छांड़ि भुव सोयो ।
 जारि मोहिनी आढ़-आढ़ कियो तब नखसिख तें रोयो ॥
 सौ भैया राजा दुर्योधन पल में गरद समोयो ।
 सूरजदास कांच अरु कंचन एकहि धगा पिरोयो ॥ २१ ॥

बिनती सुनो दोन को चित दै कैसे तव गुन गावै ।
 माया-नटिनि लकुटि कर लोनें कोटिक नाच नचावै ॥
 दर दर लोभ लागि लै डालति नाना स्वांग करावै ।
 तुम सेां कपट करावति प्रभु जू ! मेरो बुद्धि भ्रमावै ॥
 मन-अभिलाष-तरंगनि करि करि मिथ्या-निसा जगावै ।
 सोवत सपने में ज्यों संपति त्यों दिखाय बैरावै ॥

महा मोहिनी मोहि आतमा मन करि अघहि लगावै ।
 ज्यां दूती परबधू भारिकै लै पर-पुरुष दिखावै ॥
 मेरे तौ तुमही पति, तुम गति, तुम समान को पावै ।
 सुरदास प्रभु तव किरपा बिनु को मो दुख बिसरावै ॥ २२ ॥

माधवजू, मन माया दस कीनों ।

लाम-हानि कछु समुभक्त नाहीं, ज्यों पतंग तनु दीनों ।
 गृह-दीपक, छन-तेल, तूल-तिय, सुत-ज्वाला अति जोर ॥
 हों मतिहीन मरम नहिं जान्यों, पसो अधिक करि दीर ।
 बिबस भयो नलिनी के सुक ज्यों बिनु गुन मोहि गह्यो ॥
 मैं अग्यान कछु नहिं समुझ्यो, दलदल-सुंझ सद्यो ।
 बहुतक दिवस भये या जग में भ्रमत फिसो मतिहीन ।
 सुर स्यामसुन्दर जो सुमिरै, क्यों होवै गति दीन ॥ २३ ॥

लज्जा; अजिज्ञा; वाणी

माधवजू, नेकु हटकौ गाय ।

निसिवासर यह भरमति इत उत, अगह गही नहिं जाय ॥
 छुधित बहुत अघात नाहीं, निगम-दल-दल खाय ।
 अष्टदस घट नीर अंचवै तृषा तउ न बुझाय ॥
 उहूँ रसहूँ धरत आगे बहै गंध सुहाय ।
 और अहित अभच्छ भच्छति गिरा बरनि न जाय ॥
 व्योम धर नद सैल कानन इते चरि न अघाय ।
 ढीठ निठुर न डरति काहु त्रिगुन है समुहाय ॥

हर^१ न खल बल दनुज मानव सुरनि सीस चढ़ाय ।
 रचि बिरचि मुख भौंह सुन्दर^२ चलति चितहि चुराय ॥
 नील खुर जाके अरुन लोचन सेत सींग सुहाय ।
 दिन चतुर्दस खेत खूंदति सु यह कहां समाय ॥
 नारदादि सुकादि मुनिजन थके करत उपाय ।
 ताहि कहु, कैसे कृपानिधि ! सकत सूर चराय ॥ २४ ॥

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल !

काम-क्रोध को पहिरि चालना, कंठ विषय की माल ॥
 महामोह को नूपुर बाजत, निन्दा सब्द रसाल ।
 भरमभर्यो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल ॥
 तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल ।
 माया को कटि फेंटा बाँध्यो, लोभ-तिलक दिय भाल ॥
 कोटिक कला कालि दिखराई, जलथल सुधि नहि काल ।
 सूरदास को सबै अविद्या दूरि करौ नंदलाल ॥ २५ ॥

मोह-प्राबल्य

धोखे हो धोखे डहकायो ।

समुझि न परी विषयरस गोध्यो हरि-हीरा घर मांझ गँवायो ॥
 ज्यों कुरङ्ग जल देखि अवनि को, प्यास न गई चहुँ दिसि धायो ।
 जनम-जनम बहु करम किये हैं तिनमें आपुन-आप बँधायो ॥

१—पाठान्तर 'हरै'

२—पाठान्तर 'भौंह खीसी ।'

ज्यों सुक सेमर-सेव-आस लगि निसिबासर इठि चित्त लगायो ।
 रोतो पस्यो जबै फल चाख्यो उड़ि गयो तूल तांवरो आयो ॥
 ज्यों कपि डेरि बांधि बाजीगर कनकन कों चौहटे नचायो ।
 सूरदास भगवंत-भजन बिनु काल-ब्याल लै आपु डँसायो ॥२६॥

जौलों सत्य स्वरूप न सूझत ।

तौलों मन मनि-कंठ बिसारे फिरत सकल बन बूझत ॥
 अपनोही सुखमलिन मंदमति ! देखत दरपन माहिं ।
 ता कालिमा मैटिबे कारन पचत पत्थारत छाहिं ॥
 तेल तूल पावक पुट धरि धरि बनहि न बिना प्रकासै ।
 कहत बनाय दीप को बातें कहु कैसे तम नासै ॥
 सूरदास जब यह मति आई वे दिन गये अलेखे ।
 का जानै दिनकर की महिमा अंध नैन बिनु देखे ॥२७॥

अपुनपौ आपुन ही बिसर्यो ।

जैसे स्वान कांच-मंदिर में भ्रमि भ्रमि भूकि भस्यो ॥
 हरि-सौरभ मृगनाभि बसत है ड्रुम तृन सूंघि मस्यो ।
 ज्यों सुपने में रङ्ग भूप भयो तस करि अरि पकस्यो ॥
 ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखि कै आपुन कूप पस्यो ।
 जैसे गज लखि फटिकसिला में दसननि जाय अस्यो ॥
 मरकट मूठि छाँड़ि नहि दीनों घर घर द्वार फिस्यो ।
 सूरदास नलिनी को सुबटा कहि कौने जकस्यो ॥२८॥

मन

मेरो मन मतिहीन गुसाईं !

सब सुखनिधि-पदकमल छाँड़ि स्म करत खान की नाईं ॥
 फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अजान ।
 तेहि लोलच कबहुँ कैसेहुँ तृप्ति न पावत प्रान ॥
 जहँ जहँ जात तहीं भय त्रासत असम लकुटि पदत्रान ।
 कौर-कौर कारन कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान ॥
 तुम सर्वग्य सकल विधि पूरन अखिल भुवन निज नाथ ।
 तिन्है छाँड़ि यह सूर महासठ भ्रमत भ्रमनि के साथ ॥२६॥

माधव ! मन सबही विधि पोच ।

अति उन्मत्त निरंकुस मैगल चिंतारहित असेच ॥
 महामूढ़ अग्यान-तिमिर में मगन होत सुखमानि ।
 तेली केर वृषभ ज्यों भरमत भजत न सारंगपानि ॥
 गीध्यो ढीठ हेम तसकर ज्यों अति आतुर मतिमंद ।
 लुब्धौ आनि मीन आमिष ज्यों अवलोक्यो नहिं फंद ॥
 ज्वाला प्रीति प्रगट सनमुख हठि ज्यों पतंग तनु जास्यो ।
 विषय-असक्त अमित अध व्याकुल तब हम कछु न संभास्यो ॥
 ज्यों कपि सीत हुतासन गुंजा सिमिटि होत लवलीन ।
 त्यों सठ वृथा तजत नहिं कबहुँ रहत विषय आधीन ॥
 सेमर फूल सुरंग सुक निरखत मुदित होत खग-भूप ।
 परसत चौंच तूल उघरत मुख परत दुःख के कूप ॥

और कहाँ लौं कहौं एकमुख या मन के कृत काज ।
 सूर पतित, तुम पतित उधारन ! गहौं विरद को लाज ॥३०॥

निज दशा

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।

सीस पाँव धर कह्यो न मानत, तनु की दसा सिरानी ॥
 आन कहत आनै कहि आवत नाक नैन बह पानी ।
 मिटि गई चमकदमक अँगअँग को दीठि की दुस्तिहु हिरानी ॥
 नारी गारो बिन नहि बोलै पूत करै कलकानी ।
 घर में आदर कादर को सोँ, खीझत रैनि बिहानी ॥
 नाहि रही कछु सुधि तन मन की, भई है बात पुरानी ।
 सूरदास अब होत बिगूचन, भजिलै सारंगपानी ॥३१॥
 ऐसोइ करत अनेक जनम गये, मन सन्तोष न आयो ।
 दिन दिन अधिक दुरासा लागी, सकल लोक भरमायो ॥
 सुनि-सुनि सरग रसातल भूतल तहीं तहीं उठि धायो ।
 काम क्रोध मद लोभ अगिनि तेँ काहु न जरत बुझायो ॥
 लक चन्दन बनिता बिनोद सुख यह जर जरन बितायो ।
 मैं अजान अकुलाय अधिक लै जरत माँझ घृत नायो ॥
 भ्रमि भ्रमि हौं हारयो हिय अपने देखि अनल जग छायो ।
 सूरदास प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु कैसे जात नसायो ॥३२॥

प्रभु, हौं सब पतितन को टीको ।

और पतित सब दिवस चारि के, हौं तो जनमत ही को ।

बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही को ॥
 मोहि छाँड़ि तुम और उधारे मिटै सूल क्यों जो को ॥
 कोउ न समरथ अध करिबे कों खँचि कहत हैं लीको ।
 मरियत लाज सूर पतितन में हमहूँ ते' को नीको ॥३३॥

प्रभु, हैं सब पतितन को राजा ।

निन्दा परमुख पूरि रह्यो जग यह निसान तब बाजा ।
 तृष्णा देस रु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड्ड हमारे ।
 मंत्री काम कुमति दैबे को, क्रोध रहत प्रतिहारे ॥
 गज हड्डार बढ्यो दिगविजयी, लोभ छत्र करि सीस ।
 फौज असत सङ्गति की मेरी ऐसो हैं मैं ईस ॥
 मोह सोइ बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
 सूर पाप को गढ़ दूढ़ कीनों मुहकम लाय किवार ॥३४॥

हरि, हैं सब पतितनि।पतितेस ।

और न सरि करिबे कों दूजो, महा मोह मम देस ।
 आशा ने सिंहासन बैठ्यो, दम्भ-छत्र सिर तान्यो ।
 अपजस अति नकीब कहि टेरयो सब सिर आय समान्यो ॥
 मंत्री-काम-क्रोध निज दोऊ अपनी अपनी रीति ।
 दुबिधा-दुन्दुभि है निसिबासर उपजावति बिपरीति ॥
 मोदी-लोभ, खवास-मोह अरु द्वारपाल अहँकार ।
 बात अहं ममता है मेरी, माया को अधिकार ॥
 तृष्णा-सेवक भ्रमत टहल हित लहत न छिन बिस्राम ।
 अनाचार सेवक सो मिलि कै करत चबाव, न काम ॥

बाजि-मनोरथ, गर्व-मत्त गज, असत कुमत रथ सूत ।
 पायक-मन, बानैत अधीरज, सदा दुष्ट मति दूत ॥
 गढ़वै भये नरकपति मोसों दीनें रहत किवार ।
 सेना साथ बहुत भाँतिन की कीनें पाप अपार ॥
 निम्दा जगउपहास करत मग, बन्दीजन जस गाँवत ।
 हठ अन्याय, अधर्म सूर नित नौबत द्वार बजावत ॥३५॥

हरि, हैं महा पतित द्रोही अभिमानी ।
 परमारथ सों पीठि, विषय रस, भाव भगति नहिं नेकहु जानी ॥
 निसिदिन दुखित मनोरथ करि-करि, पावतहू तृष्णा न बुझानी ।
 सिरपर काल, नीच ! नहिं चितवत, आयुघटत ज्यों अँजुरी पानी ॥
 बिमुखनसों रति जोरत दिन प्रति, साधुन सों न कहूँ पहिचानी ।
 तेहि बिनु रहत नहीं पल एकहुं^१, जेहिसबदिन रस विषयबखानी ॥
 माया मोह लोभ नहिं जानै ऐसो वृन्दावन रजधानी ।
 नवलकिसोर जलदतनुसुन्दर बिसखो सूर सकलसुखदानी ॥३६॥

मो सम पतित न और गुसाईं !
 औगुन मोते अजहुं न छूटत, भलो तजो अब ताईं ॥
 जनम-जनम योंही भ्रमि आयो कपि-गुंजा की नाईं ।
 परसत सीत जात नहिं क्योंहू लै लै निकट बनाई ॥
 मोह्यो जाइ कनक-कामिनिसों, ममता मोह बढ़ाई ।
 रसना^२ स्वादु मीन ज्यों उरझी, सूझत नहिं फंदाई ॥

सोवत मुदित भयो सुपने में पाई निधि जो पराई ।
जागि पस्यो कल्लु हाथ न आयो, यह जगकी प्रभुताई !
परसे नाहिँ चरन गिरिधर के बहुत करी अनिआई ।
सूर पतित कों ठौर और नहिँ राखि लेहु सरनाई ॥ ३७ ॥

चेतावनी

बौरे मन ! रहन अटल करि जाना ।

धन दारा सुत बंधु कुटुंब कुल निरखि-निरखि बौराना ॥
जीवन जनम अल्प सुपनो सो समुझि देखि मन माहीं ।
बादर छाँह धूम-घोरहरे जैसे थिर न रहाहीं ॥
जब लगि डोलत बोलत चितवत धन दारा हैं तेरे ।
निकसत हंस प्रेत कहि भजिहैं कोउ न आवै नेरे ॥
मूरख मुरध अजान मूढ़ मति नाहीं कोऊ तेरो ।
जो कोऊ तेरो हितकारो सो कहै कटू सबेरो ॥
घरी एक सज्जन कुटुम्ब मिलि बैठे रुदन कराहीं ।
जैसे काग काग को मूये 'कां कां' कहि उड़ि जाहीं ॥
कृमि पावक तेरो तन भस्त्रिहैं समुझि देखि मन माहीं ।
दीनदयालु सूर हरि भजिले यह औसर फिरि नाहीं ॥ ३८ ॥

आछो गात अकारथ गास्यो ।

करी न प्रीति कमललोचन सेां जन्म जुवा ज्यों हास्यो ॥
निसिदिन बिषय बिलासनि बिलसत फूटि गई तुव चास्यो ।
अब लाग्यो पछितान पाय दुख दीन दर्ई को मास्यो ॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन कौन कृपा करि तास्यो ।
ताते कहत, दयालु देव सुनि काहे सूर बिसास्यो ॥ ३९ ॥

मन, तोसें केतिक ही समुझाई ।

नँदनंदन के चरन-कमल भजि तजि पाखंड चतुराई ॥

सुख संपति दारा सुत हय गय हठै सबै समुदाई ॥

छिनभंगुर ए सबै स्याम बिनु अंत नाहिँ सँग जाई ॥

जनमत मरत बहुत जुग बीते अजहूँ लाज न'आई ।

सूरदास भगवंत-भजन बिनु जैहै जनम गँवाई ॥ ४० ॥

भगति कब करिहौ जनम सिरानो ।

बालापन तै खेलत खेयो, तरुनाई गरबानो ॥

बहु परपंच करै माया को तऊ न पेट अघानो ।

जतन-जतन करि माया जोरै, लै गये रंक न रानो ॥

सुत बित बनिता मोह लगायो झूठे भरम भुलानो ।

लोभ मोह में चेत्यो नाहीं सुपने ज्यों डहकानो ॥

वृद्ध भये कफ कंठ निरोध्यो, सिर धुनि-धुनि पछितानो ।

सूरदास भगवंत-भजन बिनु जम के हाथ बिकानो ॥४१॥

दिन दस लेहु गोविंद गाय ।

छिन न चेतत चरन-अंबुज, बादि जीवन जाय ॥

दूरि जबलों जरा रोग रु चलत इंद्री भाय ।

आपुनो कल्याण करि लै मानुषी तनु पाय ॥

रूप जोबन सकल मिथ्या देखि जिन गरबाय ।

ऐसेही अभिमान आलस काल असिहै आय ॥

कूप खनि कत जाइ रे नर, जरत भवन बुझाय ।

सूर हरि को भजन करि लै, जनम-मरन नसाय ॥४२॥

प्यारे, जानि लेहु मन माहीं ।

अपने सुख को सब जग बांध्यो, कोउ काहु को नाहीं ॥
 सुख में आय सबै मिलि बैठत रहत चहुं दिसि घेरे ।
 विपत परै तब सब सँग छाँड़ैं कोउ न आवै नेरे ॥
 घर की नारि बहुत हित जासों, रहति सदा सँग लागी ।
 जब या हंस तजी यह काया ! 'प्रेत-प्रेत' कहि भागी ॥
 या विधि को व्यौपार बन्यो जग, तासों नेह लगायो ।
 सूरदास भगवंत-भजन बिनु नाहक जनम गँवायो ॥४३॥

हरि बिनु तेरो को संसार ?

माया मोह लोभ यों चाढ़े काल नदी की धार ॥
 ज्यों जन-सङ्गति होति नाव में रहत न उतरे पार ।
 तैसे धन दारा सुत सम्पति बिछुरत लगै, न बार ॥
 मानुष जनम नाम श्रीहरि को मिलै न बारंबार ।
 या छिनभंगुर तन के कारन कह करै गरब गँवार ॥
 जैसे अंधा अन्धकूप में गनत न खाल पनार ।
 तैसेहि सूर बहुत उपदेसहि सुनि सुनि गे कै बार ॥४४॥

तिहारो कृष्ण कहत कह जात ?

बिछुरे मिलन बहुरि कब है ज्यों तरुवर के पात ॥
 बात पित्त कफ कंठ निरोधे, रसना टूटे बात ।
 प्रान लये जन जाइ मूढ़मति देखत जितनी नात ॥
 छिन इक माहि कोटि जग बीतत नर की केतिक बात ।
 इह जग-श्रीति सुवा सेमर ज्यों चाखत ही उड़ि जात ॥

जब लगि जम को फंद पसो नहि चरनन चित्त लगात ।
कहत सूर बिरथा यह देही इतो कहा गरबात ॥४५॥

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात भरि जैहैं ॥
घर के कहैं बेगि ही काढ़ा भूत भये कोउ खैहैं ।
जा प्रीतम सो प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं ॥
कहैं वह ताल, कहां वह सोभा देखत धूरि उड़ैहैं ।
भाइ-बंधु अरु कुटुम-कबीला सुमिरि-सुमिरि पछितैहैं ॥
बिनु गोपाल कोउ नहि अपनो जसु-अपजसु रहि जैहैं ।
जो सूरज दुरलभ देवन को सो सतसङ्गति पैहैं ॥४६॥

जग में जीवत ही को नातो ।
मन बिछुरे तन छार होइगो, कोउ न बात-पुछातो ॥
'मैं-मेरो' कबहुं नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातो ।
विषय-असक्त रहत निसिबासर सुख सीरो, दुख तातो ॥
सांच भूँठ करि माया जोरी आपुन रूखो खातो ।
सूरदास कछु थिराना रहई, जो आयो सो जातो ॥४७॥

पश्चात्ताप

दो में एकौ तौ न भई !
ना हरि भजे, न गृह-सुख पाये, वृथा बिहाइ गई १ ॥
ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि ठई ।
अविगत-गति कछु समुझि परति नहिं जो कछु करत दई ॥

सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई ।
 पद-नख-चंद-चकोर विमुख मन खात अंगारमई ॥
 विषय-विकार-दावानल उपज्यो मोह-बयार बई ।
 भ्रमत-भ्रमत बहुतै दुख पाये। अजहुँ न टेव गई ॥
 कहा होत अब के पछिताए होनी सिर बितई ।
 सूरदास सेए न कृपानिधि जो सुख सकलमई ॥४८॥

सबै दिन गये विषय के हेत ।

तानों पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत ॥
 आंखिन अंध, स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत ।
 गङ्गाजल तजि पियत कूपजल, हरि तजि पूजत प्रेत ॥
 रामनाम बिनु क्यों छूटोगे चंद गहे ज्यों केत ।
 सूरदास कछु खरच न लागत राम नाम मुख लेत ॥४९॥

कितक दिन हरि-सुमिरन बिनु खोये !

परनिंदा रसना के रस में अपने पर तरबोये ॥
 तेल लगाय कियो रुचि मर्दन बखरहिं मलिमलि धोये ।
 तिलक बनाय चले स्वामी हूँ, विषयनि के मुख जोये ॥
 काल बली तैं सब जग कांपत ब्रह्मादिक हू रोये ।
 सूर अधमकी कहाँ कौन गति उदर भरे परि सोये ॥५०॥

शरणागति

सरन गये को-को न उबास्यो ?

जब जब भीर परी सन्तन पै चक्र सुदर्शन तहाँ सँभारयो ॥

भयो प्रसाद जो अम्बरीष को दुर्वासा को क्रोध निवासी ।
 ग्वालन हेतु धखो गोवर्धन प्रगट इन्द्र को गरव प्रहासी ॥
 कृपा करो प्रह्लाद भक्त पै खम्भ फारि उर नखन बिदासी ।
 नरहरि रूप धखो करुना करि छिनक माहिँ हरनाकुस मासी ॥
 ग्राह प्रसत गज को जल बूडत नाम लेत वाको दुख टासी ।
 सूर स्याम बिनु और करै को, रङ्ग-भूमि में कंस पड़ासी ॥५१॥

जो हम भले बुरे तौ तेरे ।

तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनु, प्रभु मेरे ॥
 सब तजि तुव सरनागत आयो निज कर चरन गहेरे ।
 तुव प्रताप-बल बढत न काहू निडर भये घर चेरे ॥
 और देव सब रङ्ग भिखारी त्यागे बहुत अनेरे ।
 सूरदास प्रभु तुमरि कृपा ते पाये सुख जु घनेरे ॥५२॥

जैसे राखहु वैसेहि रहैं ।

जानत दुख-सुख, सब जनके तुम, मुख करि कहा कहैं ॥
 कबहुँक भोजन लहैं कृपानिधि, कबहुँ भूख सहैं ।
 कबहुँक चढ़ौ तुरङ्ग महागज, कबहुँक भार बहैं ॥
 कमलनयन घनस्याम मनोहर, अनुचर भयो रहैं ।
 सूरदास प्रभु भक्त कृपानिधि तुम्हरे चरन गहैं ॥५३॥

अब हैं हरि-सरनागति आयो ।

कृपानिधान, सुदीठि हेरिये ए पतितन अपनायो ।
 ताल मृदङ्ग पाँच इन्द्रिन मिलि, बीना बेनु बजायो ।
 नटनायक मन मेरो माधव, ताही नाच नचायो ॥

उघट्यो परि कुसङ्ग भवसागर, अङ्ग अनङ्ग नसायो ।
 काम क्रोध मद लोभ मोह सँग तान-तरङ्गनि गायो ॥
 सूर अनेक देह धरि भूतल नाना भाव दिखायो ।
 नाच्यो नाच लच्छ चौरासी कहं न पुरो पायो ॥५४॥

दीनजन कैसे आवैं सरन ?

भूले फिरत सकल जल थल मग सुनहु ताप-त्रय-हरन ॥
 निपट अनाथ विवेक नैन बिनु निगम नैन नहि पावै ।
 पग पग प्रति तमकूप मोहमय को करि कृपा बतावै ॥
 नहि कर लकुट सुमति सतसङ्गति जेहि आधार अनुसरिये ।
 सूर स्याम-पद-नख-प्रताप बिनु क्यों यह तिमिर जु हरिये ॥५५॥

चकई री चलि चरन-सरोवर,

जहाँ न रैन-वियोग ।

निसिदिन कृष्ण नाम रसपूरन^१ भवर रुज नहि दुखसोग ॥
 जहाँ सनक से मीन, हंस सिव, नख-रवि-प्रभा-प्रकास^३ ।
 प्रफुलित कमल निमिष नहि ससि उर गुञ्जत निगम सुवास ॥
 जिहि सर सुभग मुक्ति-मुक्ताफल सुकृत अमृत रस पीजै ।
 सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहङ्गम इहाँ कहा रहि कीजै ॥
 लछमो सहित होति नित कोड़ा सोभित सूरजदास ।
 अब न सुहात विषय रस छोलर वा समुद्र की आंस ॥५६॥

^१ पाठान्तर ' निसिदिन राम राम की भक्ती ' ^२ पाठान्तर ' भव '

^३ पाठान्तर ' जहाँ सनक से मीन, हंस सिव मुनिजन नखरवि प्रभा प्रकास ' ।

चलि सखि तेहि सरोवर जाहिं ।

जेहि सरोवर कमल कमला रवि बिना बिगसाहिं ॥
 हंस निरमल पङ्ख उज्जल अङ्ग मलिमलि न्हाहिं ।
 मुक्ति-मुक्ता अंबु के फल तिन्हैं चुनि चुनि खाहिं ॥
 अतिहि मगन महा मधुर रस रसन मध्य समाहिं ।
 पदुम बास सुगंध सीतल लेत पाप नसाहिं ॥
 नित प्रफुल्लित रहैं जल बिनु निमिष नहिं कुम्हलाहिं ।
 देखि नीर जो छिलछिलो अति समुझि कछु मनमाहिं ॥
 सघन गुंजत बैठि तिन पर भौर हैं बिरमाहिं ।
 सूर क्यों नहिं चलौ उड़ि तहैं बहुरि उड़िबो नाहिं ॥५७॥

भगवत्सामर्थ्य

करी गोपाल की सब होई ।

जो अपना पुरुषारथ मानत अति झूठो है सोई ॥
 साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल यह सब डारहु धोई ।
 जो कछु लिखि राखी नंदनन्दन मेटि सकै नहि कोई ॥
 दुख-सुख लाभ-अलाभ समुझि तुम कतहि मरत हो रोई ।
 सूरदास स्वामी करुनामय स्याम चरन मन पोई ॥५८॥

हरिजु, तुमते कहा न होई ?

रङ्ग सुदामा कियो इन्द्र सम पाण्डव हित कौरव दल खोई ।
 पतित अजामिल दासी कुबिजा तिनहूँ के कलिमल सब धोये ॥
 बोलै गूंग, पङ्कु गिरि लंघै अरु आवै आँधो जग जोई ।

बालक मृतक जिवाय दिये द्विज जो दरबारै रोई ।
सूरदास प्रभु इच्छपूरन श्रीगोपाल सुमिरत सब कोई ॥ ५६ ॥

भगवत्कृपा

तेऊ चाहत कृपा तुम्हारी ।

जेहि के बस अनिमिष अनेक गन अनुचर आभ्यांकारी ॥
बहत पवन भरमत ससि दिनकर, फनपति सिर न डुलावै ॥
दाहकगुन तजि सकत न पावक सिन्धु न सलिल बहावै ॥
सिव बिरञ्चि सुरपति समेत सब सेवत प्रभु पद चाये ।
जो कछु करन चाहत सो ते सब करत हैं अति अकुलाये ॥
तुम अनादि अविगत अनन्त गुन पूरन परमानन्द ।
सूरदास पै कृपा करौ प्रभु श्रीवृन्दावनचन्द ॥ ६० ॥

अनन्यता

मेरो मन अनत कहाँ सुख^१ पावै ।

जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
कमलनैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
रम गङ्ग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
जेन मधुकर अम्बुजरस चारुयो क्यों करीलफल भावै^२ ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥ ६१ ॥

^१ पाठान्तर 'सुख' ^२ पाठान्तर 'खावै' ।

तुम तजि और कौन पै जाऊँ ।

काके द्वार जग्य सिर नाऊँ, परहथ कहाँ बिकाऊँ ॥

ऐसे को दाता है समरथ जाके दये अघाऊँ ।

अन्तकाल तुमरो सुमिरन गति अनत कहूँ नहिं जाऊँ ॥

रङ्ग अयाची कियो सुदामा दियो अभयपद ठाऊँ ।

कामधेनु चिन्तामनि दीनों कलपवृच्छ तर छाऊँ ॥

भवसमुद्र अति देखि भयानक मन में अधिक डराऊँ ।

कीजै कृपा सुमिरि अपनो प्रन सूरदास बलि जाऊँ ॥६२॥

अब कैसे दूजे हाथ बिकाऊँ ।

मन-मधुकर कीनों वा दिनते चरन-कमल निज ठाऊँ ॥

जो जानों औरै कोउ कर्त्ता तऊ न मन पछिताऊँ ।

जो जाको सोई सो जानै अघतारन नर नाऊँ ॥

या परतीति होय या युग को परमित छुटत डराऊँ ।

सूरदास प्रभु सिन्धु-चरन तजि नदी सरन कत जाऊँ ॥६३॥

मेरे जिय ऐसी आनि बनी ।

छाँड़ि गोपाल और जो सुमिरौं तौ लाजै जननी ॥

मन क्रम बचन और नहिं चितवौं जब तब स्याम धनी ।

बिप को मेरु कहा लै कीजै, अमरन एक कनी ॥

कहा लै करौं कांच को संग्रह त्यागि अमोल मनो ।

सूरदास भगवन्त-भजन को तजी जाति अपनी ॥६४॥

जाको मन लाग्यो नंदनंदहिं

ताहि और नहिं भावै हो ।

ज्यों गूंगो गुर खाय अधिक रस सुख सवाद न बतावै हो ॥

जैसे सरिता मिलै सिंधु को बहुरि प्रवाह न आवै हो ।

ऐसे सूर कमललोचन ते चित नहिं अनत डुलावै हो ॥६५॥

अनुराग

मन रे ! माधव सों करि प्रीति ।

काम क्रोध मद लोभ मोह तू छांड़ि सबै बिपरीति ॥

भौरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप ।

सब कुसुमनि मिलि रस करै, कमल बंधावै आप ॥

सुनि परिमित पिय प्रेम की चातक चितवत पारि ।

घन आसा सब दुख सहै, अंत न जाँचै बारि ॥

देखो करनी कमल की कीनों जल सों हैत ।

प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो सूख्यो सरहिं समेत ॥

दीपक पीर न जानई पांवक परत पतंग ।

तनु तौ तेहि ज्वाला जस्यो चित न भयो रसभंग ॥

मीन वियोग न सहि सकै नीर न पूछै बात ।

देखि जु तू ताकी गतिहि रति न घटै तन जात ॥

प्रीति परेबा की गनो, चाहन चढ़त अकास ।

तहँ चढ़ि तीय जु देखिये परत छांड़ि उर स्वास ॥

सुमिरि सनेह कुरङ्ग को खवननि राख्यो राग ।

धरि न सकत पगु पछमनो सर सनमुख उर लाग ॥

देखि ज़रनि जड़ नारि की जरत प्रेत के । सङ्ग ।
 चिता न चित फोको भयो रचा जु रिय के । रङ्ग ॥
 लोक बेद बरजत सबै नयननि देखत त्रास ।
 चोर न जिय चोरो तजै सरबस सहै बिनास ॥
 सब रस को रस प्रेम है विशयी खेलै सार ।
 तन मन धन जोवन खिसै तऊ न मानै हार ॥
 तैं जु रतन पायो भलो, जान्यो साधु-समाज ।
 प्रेम-कथा अनुदिन सुनो तऊ न उपजी लाज ॥
 सदा सँवाती आपुनो जिय को जीवनपान ।
 सो तू विसरयो सहज ही हरि ईश्वर भगवान ॥
 वेद पुरान स्मृति सबै सुर नर सेवन जाहि ।
 महामूढ़ अज्ञानमति क्यों न सँभारत ताहि ॥
 खग मृग मोन पतङ्ग लौं में सोधे सब ठौर ।
 जल थल जीव जिते निने कहैं कहां लगि और ॥
 प्रभु पूरन पावन सखा प्राननहू को नाथ ।
 दोनदयालु कृपालु प्रभु जीवन जाके हाथ ॥
 गरभ-बास अति त्रास में जहां न एकौ अङ्ग ।
 सुनि सठ तेरो प्रानपति तहाँ न छाँड़्यो सङ्ग ॥
 दिना रात पोषत रहै जथा तँबोली पान ।
 वा दुख तेँ तोहि काढ़ि कै ले दीनें पयपान ॥
 जिन जड़ तेँ चेतन कियो रचि गुन तत्वविधान ।
 चरन, चिकुर, कर, नख दिये नैन, नासिका, कान ॥

असन बसन बहु बिधि दिये औसर औसर आनि ।
 मात पिता भैया मिले नई रुची पहिचानि ॥
 सजन कुटुंब परिजन बढे सुत दारा धन धाम ।
 महामूढ विषयो भयो चित आकरण्यो काम ॥
 खान पान परिधान रस जोबन गयो बितोत ।
 ज्यों बिट परि परतीयबस भोर भये भयभीत ॥
 जैसे सुख ही मन बढ्यो तैसे बढ्यो अनङ्ग ।
 धूम बढ्यो लोचन खस्यो सखा न सूझ्यो सङ्ग ॥
 जम जान्यो सब जग सुन्यो बाढ्यो अजसु अपार ।
 बीच न काहू तव कियो दूतनि काढ्यो बार ॥
 कह जान्यो कहवा मुवो ऐसे कुमति कुमीच ।
 हरि सों हेतु बिसारि कै सुख चाहत है नोच ॥
 जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहैं सौ बार ।
 एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ सूर गवाँर ॥६६॥

अब तो प्रगट भई जग जानी ।

वा मोहन सों प्रीति निरन्तर क्यों निबहैगी छानी ॥
 कहा करौ सुन्दर मूरति इन नैननि माँझि समानी ।
 निकसत नाहि बहुत पचिहारो रोम रोम अरुभानी ॥
 अब कैसे निर्बारि जाति है, मिले दूध ज्यों पानी ।
 सुरदास प्रभु अन्तरजामी, उर अन्तर की जानी ॥६७॥

तुमहिं बिना मन धिग अरु धिग घर ।

तुमहि बिना धिग धिग माता पितु,

धिग धिग कुलकी कानि लाज डर ॥

धिग सुत पति धिग जीवन जग को धिग तुम बिन संसार ॥

धिग निसिदिवस घरो पल कहिये तुम बिन नन्दकुमार ।

धिग धिग स्रवन कथा बिन हरि को धिग लोचन बिन रूप ।

सूरदास तुम बिन घर बन ज्यों, यह जीवन तम कूप ॥६८॥

नेक नहीं मन घर सेां लागत ।

मात पिता गुरुजन परबोधत, नीके बचन बान सम लागत ॥

तिनकों धिग धिग कहत मनहिमन, इनकों बनै भलेही त्यागत ।

स्याम-बिमुख नर नारि बृथा सब, कैसे मन इनसेां अनुरागत ॥

इनको बदन प्रात दरसौ जिनि, बार बार विधिसेां यह माँगत ।

यह तन सूरस्यामकों अरप्यो, नेक दरत नहि सोवत जागत ॥६९॥

विनय

अबके नाथ मोहिं उधारि ।

मगन हौं भव-अंबुनिधि में कृपासिन्धु मुरारि ॥

नीर अति, गम्भीर माया लोभ लहरति रङ्ग ।

लिये जात अगाध जलमें गहे ग्राह-अनङ्ग ॥

मीन-इन्द्रिय अतिहि कांठति, मोट अघ सिर मार ।

पग न इत।उत धरनि पावत उरभि मोह-सिवार ॥

काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति भकझोर ।

नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर ॥

थक्यो बीच बिहाल बिहल सुनो करुनामूल ।

स्याम भुज गहि काढ़ि लीजै सूर ब्रज के कूल ॥७०॥

दीनानाथ, अब बार तुझारी ।

पतित-उधारन बिरद जानि कै बिगरी लेहु सँवारी ॥

बालापन खेलत ही खोयो जुबा बिषयरस-माते ।

वृद्ध भये सुधि प्रगटी मोकों दुखित पुकारत ताते ॥

सुतनि तज्यो तिय तज्यो भ्रात तजि, तन त्वच भई जु न्यारी

स्रवन न सुनत चरनगति थाकी नैन बहैं जल-धारी ॥

पलित केस कफ कंठ निरोध्यो कल न परै दिन रातो ।

माया मोह न छाँड़ै तृष्णा ए दोऊ दुखदाती ॥

अब या व्यथा दूरि करिबे कों और न समरथ कोई ।

सूरदास प्रभु करुनासागर तुमतें होय सु होई ॥७१॥

दीनदयालु पतितपावन प्रभु !

बिरद भुलावत कैसे ?

कहा भयो गज गनिका तारी जो जन तारौ ऐसी ॥

जो कबहुँ नर जन्म पाय नहिं नाम तुझारो लीनों ।

काम क्रोध मद लोभ मोह तजि अनत नाहिं चित दीनों ॥

अकरम अबुध अयान^१ अन्याई^२ अनमारग अनरीति ।

जाकौ नाम लेत अघ उपजै सो मैं करी अनीति ॥

इन्द्रियरस बस भयो भ्रमत रह्यो जोइ कह्यो सो कीनों ।

नेम धर्म व्रत तप नहिं संजम, साधु संग नहिं चीनों ॥

दास मलान दान दुबल अति, तिन कैसे दुखदानी ।
 पेसो सूरदास जन हरि को सब अधमनि में मानो ॥ ७२ ॥

तुम कब मोसो पतित उधासो ।

काहे को प्रभु बिरद बुलावत, बिन मसकत को तासो ॥
 गीध व्याध गज गौतम की तिय, उनको कहा निहोरो ।
 गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयो प्रभु तेरो ॥
 अजामील तो बिप्र तिहारो हुनो पुरातन दास ।
 नेक चूक ते' यह गति कीनीं, फिर बैकुंठहि बास ॥
 पतित जानि तुम सब जन तारे रह्यो न काहू खोट ।
 तौ जानों जो मेहि' तारिहौ सूर कूर कबि फोट ॥ ७३ ॥

कब तुम मोसो पतित उधारो ।

पतितनि में बिख्यात पतित हैं पावन नाम तिहारो ॥
 बड़े पतित पासङ्गहु नाहीं अजमिल कौन बिचारो ।
 भाजै नरक नाम सुनि मेरो जमनि दियो हठि तारो ॥
 छुद्र पतित तुम तारि रमापति जिय जु करौ जनि गारो ।
 सूर पतित को ठौर कहूँ नहिं, है हरि-नाम-सहारो ॥ ७४ ॥

किन तेरो गोविंद नाम धर्यो ?

लेन देन के तुम हितकारो, मोते' कछु न सरयो ॥
 बिप्र सुदामा कियो अजाची तंदुल भेट धर्यो ।
 द्रुपदसुता की तुम पति राखी अंबर दान कस्यो ॥
 गज के फंद छुड़ाये आकै, फूल जो हाथ परयो ।
 सूर की बिरियां निदुर है बैठे, काननि मूँदि धर्यो ॥ ७५ ॥

अब हैं सब दिसि हेरि रह्यो ।
 कोऊ नहिं राखत करुनामय, अति बल ग्राह गह्यो ॥
 सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि कत स्त्रम आनि करे ।
 तारा उदित तिमिर नहिं नासै बिनु रबि रूप धरे ॥
 एतो सुनि आये कमलापति निज कर चक्र लये ।
 हति गज-सत्रु सूर के स्वामी सब सुख आनि दये ॥७६॥

जैसे और बहुत खल तारे ।
 चरन-प्रताप भजन-महिमा-सुख को कहि सकै तिहारे ॥
 दुःखित गीध, दुष्ट मति गनिका नृगै कूप उद्धारे ।
 विप्र बंजाय चल्यो सुत के हित काटि महा अघ भारे ॥
 व्याध, दुरद, गौतम की नारी कहौ कौन ब्रत धारे ।
 केसी कंस कुंवल्या मुष्टिक सब सुखधाम सिधारे ॥
 उरजनि में बिष बांटि लगायो जसुमति की गति पाई ।
 रजक मल्ल चानूर दवानल दुखभञ्जन सुखदाई ॥
 नृप सिसुपाल महापद पायो सत औसर नहिं जाने ।
 अघ बक तृनावर्त धेनुक हति गुन गहि दोष न माने ॥
 पंडुबधू पटहीन सभा में कोटिन बसन पुजाये ।
 बिपतिकाल सुमिरत छिन भीतर तहीं-तहीं उठि धाये ॥
 गोप ग्वाल गोसुत जल त्रासित गोबर्धन कर धाख्यो ।
 संतत दीन महाअपराधी काहे सूर बिसाख्यो ॥ ७७ ॥

माधवजू ! जो जनते बिगरे
 तब कृपालु करुनामय केसव, प्रभु नहिं जीय धरे ॥

जैमे जननि जठर घन्तर्गत सुत अपराध करै ।
 तउ पुनि जतन करै औ पोषै निकसे अंक भरै ॥
 जद्यपि मलय वृच्छ जड़ काटत कर कुठार पकरै ।
 तऊ सुभाव सुगंध सुसीतल रिपुतनु-ताप हरै ॥
 ज्यों हल गहि धर धरषि कृषो बल बैर बीज बिथुरै ।
 सहि सनमुख त्यों सीत उष्ण कों सोई सफल करै ॥
 द्विज सों रसना दुखित होय बहु तौ रिस कहा करै ।
 जद्यपि अंग विभंग होत है लै समीप सँचरै ॥
 कारन-करन कृपालु^१ दयानिधि निज भय दोन डरै ।
 यहि कलिकाल-ब्याल-मुख-ग्रासित सूर सरन उबरै ॥ ७८ ॥

कहावत प्रभुजू ऐसे दानी ।

चारि पदारथ दये सुदामहि अरु गुरु को सुत आनी ॥
 रावन के दस मस्तक छेदे सर गहि सारँग-पानी ।
 लंक विभीषन कों दीनी तुमर पूरबली पहिचानी ॥
 बिप्र सुदामा कियो अजाची प्रीति पुरातन जानी ।
 सूरदास सोँ कहा निठुर भये नैननहू को हानी ॥ ७९ ॥

हौं तो पतित-सिरोमनि माधो ।

अजामील बातन ही तासो सुन्यो जो मोतें आधो ॥
 कै प्रभु हार मानि कै बैठहु कै अबही निस्तारो ।
 सूर पतित कों और ठौर नहि, है हरि नाम सहारो ॥ ८० ॥

तुम मेरी राखी लाज हरी !

तुम जानत सब अन्तरजामी, करनी कछु न करी ॥
 औगुन मोतें बिसरत नाहीं पल छिन घरी घरी ।
 सब प्रपंच की पोट बाँधि कै अपने सीस धरी ॥
 दारा-सुत-धन-मोह लिये हों सुधि बुधि सब बिसरी ।
 सूर पतित को बेगि उधारो, अब मो नाव भरी ॥ ८१ ॥

अब की राखि लेहु भगवान !

हम अनाथ बैठे द्रुम-डरियाँ पारधि साध्यो बान ॥
 ताके डर निकसन चाहत हैं, ऊपर रह्यो सचान ।
 दोउ भांति दुख भयो कृपानिधि, कौन उबारै ग्रान ॥
 सुमिरत ही अहि डस्यो पारधी, लाग्यो तीर सचान ।
 सूरदास गुन कहँ लगि बरनों, जैजै कृपानिधान ॥ ८२ ॥

हमारे प्रभु औगुन चित न धरो ।

समदरसी है नाम तिहारो अब मोहि पार करो ॥
 इक नदिया इक नार कहावत मैलो नीर भरो ।
 जब दोऊ मिलि एक बरन भये, सुरसरि नाम परो ॥
 इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो ।
 पारस गुन औगुन नहिं चितवै, कंचन करत खरो ॥
 यह माया-भ्रम-जाल निबारो, सूरदास सगरो ।
 अबकी बेर मोहिं पार उतारो, नहि प्रन जात टरो ॥ ८३ ॥

चूक परो मोतें मैं जानो,

मिलैँ स्याम बगसाऊँरी ।

हाहा करि दसननि तृन धरि-धरि लोचन जलनि ढराऊँरी ॥

चरन गहों गाढ़े करि करसों, पुनि पुनि सीस छुआऊँरी ।

मुख चितऊँ पुनि धरनि निहारों ऐसे रुचि उपजाऊँरी ॥

मिलौँ धाय अकुलाय भुजनि भरि उरकी तपनि बुझाऊँरी ।

सूर स्याम अपराध छमहुँ अब, यह कहि-कहि जु मनाऊँरी ॥८४॥

नाथ ! मोहिँ अब का बेर उबारो ।

तुम नाथन के नाथ सुवामी^१, दाता नाम तिहारो ॥

करमहीन जनमहि तें अंधो, मोतें कौन न कारो ।

तीन लोक के तुम प्रतिपालक, हों तो दास तिहारो ॥

तारो जाति कुजाति नाथ तुम, मो पै किरपा धारो ॥

पतितन में इक नाथक कहिए, नीचन में सरदारो ।

कोटि पाप पासंग न मेरे अजमिल कौन बिचारो ॥

नाठो धरम नाम सुनि मेरो नरक दियो^१ हठि तारो ।

मोको ठौर नहीं अब कोऊ, अपनो विरद सम्हारो ॥

छुद्र पतित तुम तारे प्यारे^२ अब न करो जिय गारो ।

सूरदास साँचो तब मानै, जो हूँ मम निस्तारो ॥ ८५ ॥

प्रभु को देख्यो एक सुभाई ।

अति गंभीर उदार उदधि सरि, जान-सिरोमनि राई ॥

^१ पाठान्तर ' नाथ अनग्नन के तुम स्वामी । '

^२ पाठान्तर ' कियो । '

तिनका सो अपने जन को गुन मानत मेरु समान ।
 सकुचि समुद्र गनत अपराधहिं बूंद तुल्य भगवान ॥
 बदन प्रसन्न कमल ज्यों सनमुख देखत हों हो जैसे ।
 बिमुख भये अकृपिन जु निमिष हूँ फिरि चितयो तो तैसे ॥
 भक्तबिरहकातर करुनामय डोलत पाछे लागे ।
 सूरदास ऐसे स्वामी को देखि जो पीठि, अभागे ॥ ८६ ॥

ढिठाई

आजु हों एक-एक करि टरिहों ।
 कै हमहीं कै तुमहीं माधव, अपुन भरोसे लरिहों ॥
 हों तो पतित सातः पीढ़िन को पतितै है निस्तरिहों ।
 अब हों उघरि नचन चाहत हैं, तुम्हें बिरद बिनु करिहों ।
 कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
 सूर पतित तबहीं लै उठिहै, जब हँसि दैहौ बीरा ॥ ८७ ॥

भक्ति-साधन

हरिरस तो कबहुँ जाय लहिण ।
 गये सोच नहिं आये आनंद, ऐसी मारग गहिण ॥
 कोमल बचन दीनता सबसों, सदा अनन्दित रहिण ।
 बाद-बिबाद हरष आतुरता इतो दण्ड जिय सहिण ॥
 ऐसी जो आवै या मन में यह सुख कहँलैं कहिण ।
 अष्ट-सिद्धि नव-निधि सूर प्रभु पहुँचै जो कछु चहिण ॥ ८८ ॥

भक्ति-पंथ पै जो अनुसरै

सुत-कलत्र-हित सो परिहरै ॥

असन-बसन-चिन्ता न करै ।

जथालाभ सन्तोषहि धरै ॥

जो प्रभु के सरनागति आवै ।

ताकों प्रभु क्योंकरि बिसरावै ॥

मात-उदर में रस पहुंचावत ।

बहुरि रुधिर ते' छीर बनावत ॥

असन हेत प्रभु बन फल करै ।

तृषा हेत जल भरना भरै ॥

पात्रस्थान हाथ हरि दीने' ।

बसन काज प्रभु बलकल कीने' ॥

सैया पृथिवी' करि बिस्तार ।

गृह गिरि कन्दर करे अपार ।

ताते' चिन्ता सकल तियाग ।

सूर स्याम-पद करु अनुराग ॥८६॥

भक्ति-पंथ कों जो अनुसरै ।

सो अष्टांग जोग कों करै ॥

यम, नियमासन, प्रानायाम ।

करि अभ्यास होइ निष्काम ॥

प्रत्याहार, धारना, ध्यान ।

करै जु छाँड़ि बासना आन ॥

क्रम-क्रम करिकै करै समाधि ।

सूर स्याम भजि मिटै उपाधि ॥६०॥

भक्त-महिमा

जाकों मनमोहन अङ्ग करै ।

ताको केस खसै नहि सिरतें जो जग बैर परै ॥

हिरनकसिपु परहारि थक्यो प्रह्लाद न नेक डरै ।

अजहं लौं उत्तानपाद-सुत राज करत न मरै ॥

राखी लाज द्रुपद-तनया की कोपित चीर हरै ।

दुरजोधन को मान भङ्ग करि बसन-प्रवाह भरै ॥

बिप्र भक्त नृग अन्धकूप दियो बलि पढ़ि बेद छरै ।

दीनदयालु कृपालु कृपानिधि कापै कह्यो परै ॥

जो सुरपति कोप्यो ब्रज ऊपर कहिधौं कछु न सरै ।

राखे ब्रजजन नन्द के लाला गिरिधर-बिरद धरै ॥

जाको बिरद हैं गरब-प्रहारी सो कैसे बिसरै ।

सूरदास भगवन्त-भजन करि सरन गहे उधरे ॥६०॥

कहा कमी जाके राम धनी ।

मनसानाथ मनोरथ पूरन सुखनिधान ताकों मौज घनी ॥

अर्थ धर्म अरु काम मोच्छ फल चार पदार्थ देत छनी ।

इन्द्र समान जासु हैं सेवक मो बपुरे की कहा गनी ॥

कहा कृपन की माया केती करत फिरत अपनी अपनी ।
 खाइ न सकै खरचि नहि जानै ज्यों भुजङ्ग सिर रहति मनी ॥
 आनंदमगन रामगुन गावै दुख सन्ताप की काटि तनी ।
 सूरदास जे भजहि राम कों तिनकी हरिसों सदा बनो ॥६२॥

हरिजू के जन को अति ठकुराई ।

महाराज रिषिवर सुर नर मुनि देखत रहे लजाई ॥
 निरभय राज ताहि हरि दोनों लाग्यो मनहि उछाहू ।
 काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि भये चार ते' साहू ॥
 दूढ़ विस्वास कियो सिंहासन, तापर बैठ्यो भूप ।
 हरिजसु बिमल छत्र सोहत सिर राजत परम अनूप ।
 हरि-पद-पङ्कज प्रजा प्रेमबस ताहीं के रँग राते ।
 मंत्री ग्यान न अवसर पावै कहत न बनै सकाते ॥
 अर्थ काम विरुदावलि गायो धर्म मोच्छ सिर नायो^१ ।
 विनय विवेक बिचित्र पौरिया, समय न काहू पायो ॥
 अष्ट महासिधि^२ आगे ठाढ़ी कर जेरे डर लोने ।
 नौ निधि तासु भ्रुकुटि बल नाचति तेहि आयसु चित दोने^३ ॥
 कायर काल कछु नहि व्यापै या रस रीतिहि जानै ।
 सूरदास या भक्तिरहस कों गुरु-प्रसाद पहिचानै^४ ॥६३॥

१ पाठान्तर ' अर्थ धर्म दोउ रहै बहै दुरि काम मोच्छ सिर नायो । '

२ पाठान्तर ' निधि ' ३ पाठान्तर ' बरीदार बैगार विनोदी बिरकि बाहिर

कीने ' ४ पाठान्तर ' सूरदास नर तो जानै जो गुरु प्रसाद पहिचानै । '

हरि-विमुख-निन्दा

छाँड़ि मन हरि-विमुखन को सङ्ग ।

जिनके सङ्ग कुमति नित^१ उपजति, परत भजन में भङ्ग ॥

कहा होत पयपान कराये बिष नहिं तजत भुजङ्ग ।

कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हावाये गङ्ग ॥

खर को कहा अरगजा-लेपन मरकट भूषन अङ्ग ।

गज को कहा न्हावाये सरिता धरै खेह पुनि छङ्ग ॥

पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतो करत निखङ्ग ।

सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रङ्ग ॥६४॥

भजन बिनु कूकर सूकर जैसो ।

जैसे घर बिलाव के मूसा रहत बिषयबल तैसो ॥

बकी और बक गोध गोधनी आइ जन्म लिय वैसो ।

उनहूँ के ए सुत दारा हैं इन्हें भेद कहु कैसो ॥

जीव मारि के उदर भरत हैं तिनके लेखे ऐसो ।

सूरदास भगवन्त-भजन बिनु मनो ऊँट खर भैंसो ॥६५॥

भगति बिनु बैल बिराने ह्वैहो ।

पाँव चारि सिर सींग गूंग मुख तब गुन कैसे गैहो ॥

टूटे कन्ध सु फूटी नाकनि कौलों धौं भुस खैहो ।

लादत जातत लकुट बाजिहै तब कहँ मूँड़ दुरैहो ।

^१ पाठान्तर 'कुबुधि उपजति है ।'

सोत घाम घन बिपति बहुत बिधि भार तरे मरि जैहौ ॥
 हरि दासन^१ को कह्यो न मानत कियो आपुनो पैहौ ।
 सूरदास भगवन्त-भजन बिनु मिथ्या जनम गँवैहौ ॥६६॥

भजन बिनु जीवत जैसे प्रेत ।

मलिन मन्दमति डोलत घर-घर उदर भरन के हेत ॥
 मुख कटुबचन नित्य परनिन्दा सगुन सुजस सुख लेत ।
 कबहुँ पाप करे पावत धन, गाँठि धूत तहँ देत ॥
 गुरु ब्राह्मन हरिभक्त सन्तजन^२ जात न कबहुँ निकेत ।
 सेवा नहिं भगवन्त-चरन की, भवन नील को खेत ॥
 कथा नहीं गुनगीत सुजस हरि, साधत देव अचेत ।
 ताकी कहा कहौ सुन सूरज, बूड़त कुटुम समेत ॥६८॥

सन्त-समागम

जा दिन सन्त पाहुने आवत ।

तीरथ कोटि अन्हान करै फल जैसे दरसन पावत ॥
 नेह नयो दिन-दिनप्रति उनको चरन-कमल चित लावत ।
 मन बच क्रम औरन नहिं जानत, सुभिरत औ सुमिरावत ॥
 मिथ्यावाद उपाधिरहित है विमल-विमल जसु गावत ॥
 बन्धन करम कठिन जे पहिले सोऊ काटि बहावत ॥

^१ पाठान्तर 'हरि सन्तन' ^२ पाठान्तर 'गुरु ब्राह्मन सन्तनजन सञ्जन'

^३ पाठान्तर 'तीरथ कोटि स्नान करे को फल दरसन ही पावत ।'

सङ्गति रहै साधु की अनुदिन भवदुख दूरि नसावत ।
सूरदास या जनम-मरन ते' तुरत परमगति पावत ॥६८॥

अभिलाषा

हैं कैसे रस-रासहि गाऊँ ?

श्रीराधिका स्याम की प्यारी तेरी कृपा बास ब्रज पाऊँ ॥
अन्य देव सपनेहुँ नहि जानौँ दम्पति कों सिर नाऊँ ।
भजन-प्रताप, सरन-महिमा ते' गुरु की कृपा दिखाऊँ ॥
नवनिकुञ्ज बन धाम निकट इक आनंदकुटी रचाऊँ ।
सूर कहा बिनती करि बिनवै जनम-जनम यह ध्याऊँ ॥६९॥

आत्म-सन्तोष

हमें नंदनन्दन मोल लिये ।

जम के फन्द काटि मुकराये, अभय अजाच१ किये ॥
भाल तिलक, स्रवननि तुलसीदल, मैटे अङ्गु बिये ।
मूँड़े मूँड़, कण्ठ बनमाला, मुद्रा-चक्र दिये ॥
सब कोउ कहत गुलाम स्याम को सुनत सिरात हिये ।
सूरदास कों और बड़ा सुख जूठनि खाय जिये ॥१००॥

पत्रिका-प्रयोजन

बिनती केहि बिधि प्रभुहिँ सुनाऊँ ?

महाराज रघुबोर धीर को समय न कबहुँ पाऊँ ॥

याम रहत यामिनि के बीते तेहि औसर उठि धाऊँ ।

सकुच होत सुकुमार नींद सेाँ कैसे प्रभुहिँ जगाऊँ ॥

दिनकर-किरन उदित ब्रह्मादिक रुद्रादिक इक ठाऊँ ।

अगनित भीर अमर मुनिगन की तिहि ते' ठौर न पाऊँ ॥

उठत सभा दिन मध्य सियापति देखि भीर फिरि आऊँ ।

न्हात खात सुख करत साहिबो कैसे करि अनखाऊँ ॥

रजनीमुख आवत गुन गावत नारद तुंबर नाऊँ ।

तुमही कहौ कृपन हैं रघुपति, किहि गिनती में आऊँ ॥

एक उपाय करौं कमलासेाँ श्रीमुख भेद सुनाऊँ^१ ।

पतित-उधारन सूर नाम प्रभु लिखि कागद पहुंचाऊँ ॥१०१॥

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

^१ पाठान्तर ' एक उपाय करौं कमलापति कहौ तो कहि समझाऊँ । '

शब्दार्थ

१—बासा = वास, निवास ।

२—राई = राजा ।

छत्र = राजछत्र ।

पाई = पैर ।

३—वल्लभ = महाप्रभु वल्लभाचार्य, जो सूरदासजी के गुरु थे ।

निबेरो = निर्णय, उद्धार ।

४—दीपक = ज्ञानरूपी दीपक से तात्पर्य है ।

उधरै = उद्धार कर देता है ।

५—बेनु = वंशी ।

ऐनु = अयन, घर ।

सरवरि = बराबरी, तुलना ।

६—बस्यो = वरण किया, व्याह किया ।

सस्यो = पूरा हुआ ।

७—मकरन्द = पराग ।

सवत = चूता है, देता है ।

८—बैनो = त्रिवेणी (गङ्गा, यमुना और सरस्वती का सङ्गम) ।

गति = शरण, मोक्ष ।

सैनी = सैना, श्रेणी ।

त्रिविक्रम = वामन भगवान् ।

उपैनी = खुली हुई, नङ्गी ॥

मेरु = सुमेरु पर्वत, यहाँ हिमालय से तात्पर्य है ।

रसैनी = रसमय ।

सृग = माला

६—सिंधुसुता = लक्ष्मी ।

क्रम = कर्मणा, कर्म से ।

रिषिपतिनी = अहल्या से तात्पर्य है ।

नृग = एक महादानी राजा ।

अहि = कालिय नाग से तात्पर्य है ।

१०—निगम = वेद ।

धर-धरन = पृथ्वी का धारण अथवा उद्धार करने-
वाली ।

गौतमनारि = अहल्या ।

सरबरन = उपमा के योग्य ।

११—फनीन्द्र = कालिय नाग ।

नाखत = नष्ट करते हैं ।

१२—विषै-रस = इन्द्रिय-सुख, भोगविलास ।

काछिनी = घाँघरे की तरह एक चुननदार पहनावा ।

कल राव = सुन्दर शब्द ।

हृद = कुंड ।

मलयज = चम्दन ।

बनमाल = कुंद, कमल, तुलसी आदि की माला ।

सुरभि-मंडित रेनु = गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल ।

गंडमंडल = गाल का ऊपरी भाग ।

मैन = कामदेव ।

सिखीसिखंड = मोर पंख ।

कोदंड = धनुष ।

१३—रमा = केला ।

तनु = पतलो, कृश ।

किंकिनी = करधनी, तागड़ी ।

बलाक = बगुला ।

करज = अंगुली ।

बंधूक = एक लाल रङ्ग का फूल ।

बिद्रुम = मूंगा ।

बिब = बिबाफल ।

कीर = तोता (तोते की चोंच से नाक का उपमा दी जा सकती है) ।

तरनि = सूर्य ।

सुदेश = सुन्दर ।

१४—अंचवत = पीते हैं ।

सिखी = मोर ।

अली = भ्रमर ।

तडित बसन = बिजली-जैसा पीताम्बर ।

कुटिल = घुंघरवाले ।

१५—सिखंड = मोर पंख ।

आजत = शोभित ।

बड्कट = टेढ़ी ।

पेखि = देखकर ।

गंड = कपोल का ऊपरी भाग ।

दाडिम = अनार, अनार के बीज से दाँतों की उपमा दी जाती है ।

१६—प्रनतपाल = शरण में आये हुएों की रक्षा करनेवाले ।

राजीव = कमल ।

सारंगधर = धनुष धारण करनेवाले ।

बिड्डल = बिष्णु का एक नाम ।

खर, दूषण, त्रिशिरा = रावण के समय के दंडका-
रण्यवासी राक्षस । ।

दंडक = दंडक वन ।

बकी = पूतना ।

बक = बकासुर ।

वरुन-निस्तारन = वरुण देवता के दूत एक बार
नन्दजी को यमुना में से पकड़ ले
गये थे । श्रीकृष्ण ने जाकर वहाँ से,
वरुण को कृतार्थ कर, उन्हें छुड़ाया
था ।

रिषि = विश्वामित्र से तात्पर्य है ।

तात = पिता; दशरथ से तात्पर्य है ।

पातन = नाशकर्त्ता ।

केशि, अघ, अरिष्ट, धेनुक = कंश के अनुचर राक्षस ।

पिनाक = (शिवजी का) धनुष ।

बिराध = एक राक्षस ।

उत्तर क्रिया = मृतक-संस्कार ।

गीध = जटायु से तात्पर्य है ।

गारी = प्रकट की ।

सद = सदा ।

१७—पारस = एक पत्थर जिसके स्पर्श से, कहते हैं,
लोहा सोना हो जाता है ।

१८—समागम = संगति ।

कथि = कह कर ।

बादि = व्यर्थ ।

१६—सुक = व्यासजी के बाल परमहंस पुत्र शुकदेव ।

जार = जाल ।

गुन = सत्त्व, रज और तमोगुण ।

भवभार - जन्म-मृत्यु का दुःख ।

२०—परमान = प्रमाण, विश्वास, आश्रय ।

भील = गुह आदि या शबरी ।

निगम = वेद ।

२१—विगोयो = नष्ट हुआ, भ्रम में पड़ा ।

बिलोयो = नष्ट कर दिया, गड़बड़ी मचा दी ।

जोयो = देखा गया ।

कामिनी = मोहिनी-रूपधारी विष्णु से तात्पर्य हैं ।

गरद समोयो = मिट्टी में मिला दिया, सर्वनाश कर दिया ।

धगा = डोरा ।

२२—दर दर = द्वार द्वार ।

मिथ्या निशा = अविद्या रूपी रात ।

बौरावै = पागल कर देती है, बुद्धि भ्रष्ट कर देती है ।

भोरि कै = बहका कर ।

गति = शरण ।

२३—पतंग = पतिगा ।

तूल = रुई ।

मरम = भेद ।

गति = दशा ।

२४—गाय = अविद्या, तृष्णा अथवा वाणी से तात्पर्य है ।

अगह = अग्राह्य, जो पकड़ी न जा सके ।

अष्टदशघट = १८ पुराणों से तात्पर्य है ।

छह रस = ६ शास्त्रों से तात्पर्य है ।

व्योम = आकाश ।

चतुर्दश खेत = १४ लोक से तात्पर्य है ।

दिन = नित्य ।

२५—चोलना = एक तरह का लम्बा ढीला-ढाला कपड़ा ।

रसाल = मधुर ।

पखावज = मृदङ्ग ।

घट = शरीर ।

काछि = धारण कर, रच कर ।

२६—गीध्यो = ललचाया ।

कुरंग = हिरण ।

सेमर सेब = सेमर का फल; सेमर एक पेड़ होता है, जिसके बड़े लाल फूल देख कर तोता मगन हो जाता है, पर फल पर चोंच मारने से उसके भीतर से सिर्फ रई ही निकलती है !

तूल = रई ।

ताँवरो = शोक, मूर्च्छा ।

कनकन = अनाज का एक एक दाना ।

२७—पचत = श्रम कर रहा है ।

पखारत = धोता है ।

अलेखे = व्यर्थ ।

२८—हरि-सौरभ = कस्तूरी ।

केहरि = सिंह ।

फटिक = स्फटिक ।

असो = अड़ गया ।

मरकट = बन्दर ।

२६—सदन = घर ।

असम = टेढ़ा; असहनीय ।

पदत्रान = जूता ।

अखिल = सर्व ।

३०—मैगल = मत्त हाथी ।

केर = का ।

वृषभ = बैल ।

सारंगपानि = धनुर्धारी श्रीरामचन्द्र ।

तस्कर = चोर ।

आमिष = मांस ।

फन्द = जाल ।

हुतासन गुंजा = लाल लाल गुंजा (घुंघचू) को आग
समझ लेना ।

सेमर फूल = २६ पद देखो ।

उघरत = निकलता है ।

बिरद = बाना ।

३१—धर = धड़ ।

सिरानी = ठंडी पड़ गई, शिथिल हो गई ।

कलकानी = कलह ।

बिगूचन = असमंजस, अड़चन ।

३२—रसातल = पाताल ।

सक = माला ।

नायो = डाल दिया ।

अनल = तृष्णा या मोह से तात्पर्य है ।

३३—टीको = श्रेष्ठ ।

लीको = लीक, लकीर ।

३४—रु = अरु, और ।

सुभट = बड़े योद्धा ।

प्रतिहारे = द्वारपाल ।

हङ्कार = अहङ्कार ।

असन = दुष्ट ।

ईस = प्रभु ।

गढ़ = किला ।

३५—सरि = बराबरी ।

नकीब = बन्दीजन, कड़खैत ।

मोदी = बनिया ।

खवास = टहलुवा ; नाई ।

चबाव = लोकनिन्दा, चुगलखोरो ।

बाजि = घोड़ा ।

पायक = पैदल; हरकारा ।

नौबत = रोशनचौकी ।

३६—पीठि = विमुख ।

अंजुरी = अंजलि ।

बिमुखन सेां = नास्तिकों से ।

जलद = मेघ ।

३७—भली = नेकी ।

ताई = तक ।

रसना = जीभ ।

कनक = धन से तात्पर्य है ।

अनियाई = अन्याय, अनीति ।

३८—बौराना = उन्मत्त हो गया ।

अल्प = अल्प, थोड़ा ।

धौरहरे = ऊंची अट्टालिका, बुर्ज ।

दारा = स्त्री ।

हंस = आत्मा से तात्पर्य है ।

नेरे = पास ।

सबेरो = तुरन्त ।

मूये = मरने पर ।

कृमि = कीड़ा ।

३९—गात = शरीर ।

अकारथ = व्यर्थ ।

गास्यो = गलाया, नष्ट किया ।

चास्यो = चारों नेत्र; दो चर्म नेत्र और दो ज्ञान नेत्र ।

दई = दैव ।

कुचील = मैले कपड़े पहिननेवाला ।

४०—गय = हाथी ।

छिनभंगुर = क्षणिक, क्षण में नाश होनेवाला ।

४१—तरुनाई = जवानी ।

गरबानो = मस्ती में आ गया ।

माया = धन दौलत से तात्पर्य है ।

रानो = राजा ।

बित = धन ।

निरोध्यो = बंद कर दिया ।

४२—बादि = व्यर्थ ।

जरा = बुढ़ापा ।

भाय = स्वभाव से, ज्यों की त्यों ।

खनि = खोद कर ।

४३—हंस = आत्मा से तात्पर्य है ।

नाहक = व्यर्थ ।

४४—खाल = नीचा ।

पनार = मेरी, नाला ।

४५—पात = पत्ते ।

नात = नाता, संबंध ।

बोतत = नष्ट होता है ।

सुवा-सेमर = २६ पद देखो ।

४६—पंछी = प्राण से तात्पर्य है ।

घनेरी = अधिक ।

कबीला = स्त्री, जोरू ।

सो सत्संगहि पैहै = सत्संग से वह अर्थात् ब्रह्मानंद
प्राप्त होगा ।

४७—पुछातो = पूछनेवाला ।

सुहातो = अच्छा लगनेवाला ।

सीरो = ठंडा, आनंदप्रद ।

तातो = गरम, कष्टप्रद ।

रूखो = रूखा-सूखा ।

४८—अविगत-गति = अनिर्वचनीय अद्भुत दशा ।

दई = दैव ।

खई = रार, भगड़ा ।

अंगारमई = विषय वासनात्मक दुःखरूपी सुख ।

दावानल = वन में लगी हुई प्रचंड आग ।

बयार = वायु ।

बई = बही, चलो ।

४६—पन = अवस्था ।

केत = केतु नक्षत्र ।

५०—जोये = देखे ।

५१—उबासो = बचाया ।

भोर = कष्ट ।

सुदर्शन = विष्णु भगवान् का चक्र ।

प्रसाद = कृपा ।

अंबरीष = एक महा भागवत राजा ।

दुर्वासा = एक परम क्रोधी ऋषि ।

गोवर्धन = एक पहाड़ ।

प्रगट = प्रत्यक्ष ।

बिदासो = चीर-फाड़ डाला ।

ग्राह = मगर ।

५२—बदत = समझता हूँ, मानता हूँ ।

अनेरे = झूठे, अन्यायी, व्यर्थ ।

घनेरे = बहुत ।

५३—भार बहौं = बोझा ढोता हूँ ।

कमलनयन = कमल-जैसे नेत्रवाले ।

५४—दीठि = दृष्टि ।

बेनु = वंशी ।

उघझो = खुल गया ।

अनंग = कामदेव ।

लच्छ चौरासी = ६४ लाख योनिवाँ ।

५५—तापत्रय = भौतिक, दैहिक और दैविक दुःख ।

निपट = बिल्कुल ।

विवेक = सत् और असत् का ज्ञान ।

अनुसरिये = चलना चाहिए ।

तिमिर = अज्ञानरूपी अंधकार ।

५६—चकई = बुद्धि से तात्पर्य है ।

चरन सरोवर = श्रीकृष्ण का चरणरूपी तालाब ।

रस = जल, आनंद ।

रुज = रोग (जन्म-मरण) ।

सोग = शोक ।

निगम-सुवास = वेद रूपी सुगंध ।

सुकृत = पुण्य कर्म ।

बिहंगम = पक्षी ।

यहाँ = संसार से अभिप्राय है ।

छोलर = छोटा छिछला गड्ढा, तलैया ।

५७—पदुम = कमल ।

छिलछिलो = छिछला ।

बिरमाहिँ = रमते हैं ।

बहुरि उड़िबो नाहिँ = फिर जन्म नहीं लेना होगा ।

५८—अलाभ = हानि ।

पोई = लगाओ ।

५९—रंक = गरीब ।

अजामिल = एक महा पातकी ब्राह्मण जो अंत समय
नारायण का नाम लेकर मुक्त हो गया
था ।

पंगु = लँगड़ा ।

आवै जोई = देख आवे ।

६०—अनिमिष = एक पल का भी विलंब न होना, तुरंत ।

भरमत = चक्र काटते हैं ।

फनपति = शेष नाग ।

चाये = चाव से, प्रेमपूर्वक ।

६१—अनत = अन्यत्र, दूसरी जगह

महातम = माहात्म्य ।

करील = एक काँटेदार पेड़ जिसके फल को टेंटो कहते हैं । ब्रज में यह बहुत होता है ।

छेरी = बकरी ।

६२—परहथ = दूसरे के हाथ ।

अयाची = जिसे दूसरी जगह न मांगना पड़े; पूर्ण तृप्त ।

अभय पद = निर्भय स्थान, गोलोक धाम ।

कामधेनु = स्वर्ग की एक गाय जो मनोवाञ्छित सुखों को देती है ।

चिंतामनि — स्वर्ग का एक अणि जो सारी चिन्ताओं को दूर कर देता है ।

कलपवृक्ष = स्वर्ग का एक पेड़ जिसके नीचे बैठते ही मनस्कामनाएँ पूरी हो जाती हैं ।

६३—नाऊँ = नाम ।

कत = कैसे, क्यों ।

६४—मेरु = सुमेरु पर्वत ।

कनी = कण ।

६५—गुर = गुड़ ।

कमललोचन = कमल जैसे नेत्रवाले श्रीकृष्ण ।

६६—चातक = पपीहा ।

पारि = जलाशय का तट, दिशा ।

अंत = अन्यत्र ।

पतंग = पतिंगा ।

रसभंग = दुखी ।

रति = प्रीति ।

परेवा = कवूतर ।

कुरंग = हिरण ।

पछमनो = पीछे ।

जड़ = मूर्ख ।

प्रेत = मुर्दा ।

रची = रंगी हुई ।

अनुदिन = नित्य

सँघाती = साथी ।

स्मृति = धर्मशास्त्र के ग्रन्थ ।

सँभारत = सेवा करता है ।

अंग = सहायक ।

गुन = सत्त्व, रज और तमोगुण ।

तत्त्व-विधान = २५ तत्त्वों की रचना ।

चिकुर = बाल ।

असन = भोजन ।

सजन = स्वजन, प्यारे ।

दारा = स्त्री ।

आकर्ष्यो = खींचा, मोहित किया ।

परिधान = वस्त्र !

बिट = व्यभिचारी ।

भोर = सबेरा ।

बीच = रक्षा ।

कहँवा = कहाँ ।

मुवा = मरा ।

एकहु झड्डु = तनिक भी, किसी भी तरह ।

६७—छानी = छिपी हुई, गुप्त ।

अरुभानी = उलझ गई, लवलीन हो गई ।

निरवारि जाति है = सुलभाई जाती है ।

अन्तर्यामी = हृदय की बात जाननेवाले, सर्वव्यापक ।

कानि = मर्यादा ।

तमकूप = अन्धकूप ।

६६—परबोधत = समझाते हैं ।

धरप्यो = सौंप दिया ।

७०—अंबुनिधि = समुद्र ।

मुरारि = मुर नामक दैत्य के मारनेवाले ; श्रीकृष्ण ।

ग्राह-अनंग = कामरूपी मगर ।

मोट = पोटली ।

नाम-नौका = भगवन्नामरूपी नाव, जिस पर चढ़ कर जीव संसार-सागर से तर सकता है ।

कूल = किनारा ।

७१—बिरद = यश, प्रण ।

जुवा = यौवन

त्वच = चमड़ा ।

पलित = पके हुए ।

निरोधयो = बन्द कर दिया, घरघराने लगा ।

७२—अयान = अज्ञानी ।

अन्याई = अनीतिरत ।

चीनों = पहिचाना ।

मानी = माननीय; श्रेष्ठ; घमंडी ।

७३—मसकत = मेहनत, प्रयत्न ।

निहोरो = उपकार, ऐहसान ।

पुरातन = पुराना, पूर्व जन्म का ।

फोट = फोकट, निस्सार, झूठा ।

७४—तारो = ताला ।

गारो = त्याग ।

७५—सखो = बन पड़ा ।

तंदुल = चावल ।

द्रुपदसुता = द्रौपदी ।

पति = लाज ।

अम्बर = कपड़ा ।

बिरियाँ = समय ।

७६—तिमिर = अंधेरा ।

कमलापति = लक्ष्मीपति, विष्णु भगवान् ।

७७—नृगै = राजा नृग को ।

बजाय = डङ्का बजा कर, उजागर होकर ।

दुरद = (द्विरद) हाथी ।

केसी = कंश का अनुचर एक राक्षस ।

कुवल्या = कंश का एक प्रमत्त हाथी ।

मुष्टिक = कंश का एक मल्ल-युद्ध-विशारद योद्धा ।

सुखधाम = गोलोक से तात्पर्य है ।

चानूर = कंश का एक मल्लयुद्ध-विशारद योद्धा ।

रजक = कंश का एक धोबो ।

अघ, बक, तृनावर्त, धेनुक = कंश के अनुचर
मायावी राक्षस ।

पंडुबधू = द्रौपदी ।

पुजाये = पूरे किये ।

संतत = सदा । •

७८—जठर = गर्भ ।

मलय = चंदन ।

कुठार = कुल्हाड़ी ।

रिपु = काटनेवाला ।

धर = धरा, जमीन ।

धरषि = जोतकर ।

कृषी = किसान ।

द्विज = दाँत ।

कारन-करन = कारण के भी कारण ।

७९—चारि पदार्थ = अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।

सर = शर, बाण ।

सारंगपानी = हाथ में धनुष लेनेवाले, श्रीरामचंद्रजी ।

पूरबली = पूर्व जन्म की ।

८०—निस्तारो = उद्धार करो ।

८१—पोट = गठरा ।

दारा = स्त्री ।

८२—पारधि = बहेलिया, शिकारी ।

८३—नार = नाला ।

खरो = चौखा, असल ।

निवारो = काटो ।

८४—बगसाऊँ = माफ़ करा लूँ ।

गाढे करि = मज़बूती से ।

तपनि = विरहाग्नि ।

८५—सुवामो = स्वामी ।

नकारो = अस्वीकृति ।

नायक = मालिक, श्रेष्ठ ।

नाठो = हट गया, भाग गया ।

तारो = ताला ।

गारो = त्याग, तिरस्कार ।

८६—उदधि = समुद्र ।

जान = सुजान, चतुर ।

तिनका = तृण ।

सुमेरु = पर्वत ।

कातर = अधीर ।

पीठि देहि = विमुख होते हैं, शरण में नहीं जाते हैं ।

८७—उघरि = प्रकट होकर, खुल कर ।

विरद = यश ।

कत = क्यों ।

बीरा = पान का बीड़ा; वीरता-प्रदर्शन या विश्वास
पात्रता पर स्वामी सेवक को पान का बीड़ा
दिया करता है ।

८८—आतुरता = अधीरता ।

निद्धि = निधि ।

८६—कलत्र = स्त्री ।

असन = भोजन ।

उदर = पेट, गर्भ ।

छीर = दूध ।

पात्र = बरतन ।

बलकल = पेड़ों की छाल ।

कंदर = गुफा ।

तियाग = त्याग कर ।

६८—अष्टांग योग = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि पातंजल योग दर्शन के अनुसार क्रमशः इन अङ्गों द्वारा मोक्ष-लाभ किया जा सकता है ।

वासना = इच्छा ।

निष्काम = इच्छारहित ।

क्रम-क्रम = धीरे-धीरे ।

उपाधि = रोग, जन्म-मरण से तात्पर्य है ।

६९—अंग करै = अपना ले ।

खसै = गिरता है ।

परहारि = मार कर ।

उत्तानपाद-सुत = ध्रुव ।

छरै = दुःख भोगता है ।

सरै = पूरा होता है ।

७०—धनी = स्वामी ।

मनसा = मनस्कामना ।

धनी = बहुत ।

छनी = क्षण में ।

बपुरा = गरीब ।

गनी = गिनती ।

तनी = डोर, फन्दा ।

६३—ठकुराई = मालिकी, प्रभुता ।

भूप = भक्त से तात्पर्य है ।

छत्र = राजछत्र ।

राजत = शोभित ।

रंगराते = प्रेममग्न ।

सकाते = शङ्कित किया ।

पौरिया = द्वारपाल ।

डर लीने = भयभात ।

गुरुप्रसाद = गुरु की कृपा ।

६४—भंग = बाधा ।

अरगजा = चंदन, खस, केसर आदि का लेप ।

मरकट = बन्दर ।

खेह = धूल ।

लंग = गोद, अंक

पाहन = पत्थर ।

निखंग = तरकस ।

कामरि = कम्बल ।

६५—कूकर = कुत्ता ।

सुकर = सुअर ।

भैंसो = भैंस ।

६६—बिराने = पराये ।

लकुट बाजिहै = लकड़ी पड़ेगी; लकड़ी से
पियोगे ।

दुरैहौ = छिपाओगे ।

तरे = नीचे ।

६७—धूत = धूर्त ।

निकेत = घर ।

अचेत = जड़, भूत, प्रेत आदि ।

सूरज = सूरदास से अभिप्राय है ।

बूड़त = नाश हो जाता है ।

६८—पाहुने = अतिथि ।

अन्हान = स्नान ।

चरनकमल = हरि-चरणारविंदों से अभिप्राय है ।

क्रम = कर्म से ।

उपाधि = विकार ; बाधा ।

बहावत = हटादेते हैं ।

अनुदिन = नित्य ।

६९—रस-रास—रस अर्थात् श्रीराधाकृष्ण के नित्य
विहार का आनन्द ।

दम्पति = श्रीराधाकृष्ण ।

बनधाम = वृन्दावन धाम ।

१००—मुकराये = छुड़ा दिये ।

अजाच = अयाची ।

बिये = प्रारब्ध के बीज ।

मुद्राचक्र दिये = शंख-चक्र की मुद्रा से भुजाएँ
अङ्कित कर दीं । शंख-चक्र को तप्त
व शीतल मुद्राएँ वैष्णव धारण

करते हैं । वैष्णवों के पंच संस्कारों
में इसका उल्लेख है ।

सिरात = ठंडा होता है; प्रसन्न होता है ।

१०१—याम = प्रहर ।

दिनकर = सूर्य ।

भीर = भीड़ ।

अनखाऊँ = अप्रसन्न करूँ ।

रजनीमुख = संध्याकाल ।

तुम्बर = गान-विद्या के आचार्य परम भागवत

तुम्बर ऋषि ।

कृपन = अनाथ ।
